निराला की काव्य साधना

निराला की काव्य-साधना

[राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध-निबन्ध]

लेखिका

वीणा शर्मा एम० ए०

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य संसार

दिल्ली-७ पटना-४

प्राक्कथन

पहले पहल मेरा विचार 'निराला : व्यक्तित्व और कृतित्व' पर अधिनिबंध लिखने का था, किन्तु कुछ अध्ययन और लेखन का काम कर लेने पर ऐसा प्रतीत हुआ कि यह विषय कुछ अधिक विस्तीर्ण हो सकता है। अतएव इस भय से आक्रान्त होकर कि इस रूप में यह विषय एम. ए. के अधिनिबंध के सीमित पृष्ठों में न सिमिट सकेगा, मैंने अपने निर्देशक से इसे सीमित करने की प्रार्थना की। प्रस्तुत कृति उसी का परिणाम है। विषय है 'निराला की काव्य-साधना'।

इस कृति के अवलोकन से विदित हो सकता है, मैंने निराला की काव्य-कृतियों को मूल रूप में पढ़ने का प्रयत्न किया है; फिर भी निराला की एक-दो कविताएँ उपलब्ध नहीं हो सकीं; अतएव उनको मैंने अपने पाठ्य-संग्रहों में से पढ़ा है। मेरा यह प्रयत्न अक्षम होते हुए भी अक्षम्य नहीं है।

जैसाकि विषय से विदित होता है मैंने निराला को उनके काव्य तक ही सीमित रखा है। कवि निराला को समझने के लिए मैंने विद्वानों की आलोचनात्मक कृतियों को तो पढ़ा ही है, साथ ही कवि के विभिन्न संग्रहों की भूमिकाओं को भी बड़े मनोयोग से पढ़ा है। उनमें मुझे निराला का मत उन्हीं के शब्दों में मिल गया है। यह ठीक है कि आलोचक और गवेषक को मूलतः अपनी दृष्टि का उपयोग ही करना चाहिये, किन्तु कवि या लेखक की दृष्टि का उपयोग भी प्रशस्त आलोचना में सहयोग देता है। निराला के काव्य की आधार-भूमि को मैंने अनेक परिपार्श्वों में देखने का प्रयत्न किया है।

यद्यपि कला और दर्शन में प्रथित भेद होता है, किन्तु दर्शन को कला की आधार-भूमि का एक अंग होने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है। निराला के काव्य में कला की परीक्षा करते समय उनके दर्शन को किसी भी स्तर पर भुलाया नहीं जा सकता। निराला एक ऐसे प्रौढ़ एवं क्रांतिकारी कलाकार हैं कि उनकी कला के पीछे एक विचारधारा निहित है। उसकी परीक्षा के लिए उनके

काव्य की सामाजिक पृष्ठभूमि का अवलोकन भी आवश्यक समझा गया है। निराला के व्यक्तित्व को समाज और दर्शन से जो कुछ मिला है वही तो उनकी कला में व्यक्त हुआ है। अतएव विषय के परिपार्श्वों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है कि वे एक दूसरे से जुड़कर 'अधिनिबंध' के नाम को सार्थक बना दें।

प्रूफ-संशोधन की कोई भूल न रह जाये, इसका मैंने पूरा प्रयत्न किया है लेकिन फिर भी कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं जिनका जिम्मेदार प्रेस तो है ही, किन्तु कुछ मेरी अपनी अज्ञता की सहचरी होंगी, जिनको खोजने का प्रयत्न तो मैंने किया है, किन्तु सहचरी होने के कारण मेरी अज्ञता ने उनको कहीं-कहीं छिपा लिया होगा। वस्तुतः इसके लिए भी दोषी मैं ही हूँ और क्षम्य हूँ।

—लेखिका

भूमिका

आधुनिक हिन्दी-साहित्य के कर्णधारों में महाकवि निराला का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने जो कुछ लिखा है उसमें से बहुत कुछ ऐसा है जैसा दूसरे नहीं लिख सके हैं। उन्होंने आधुनिक हिन्दी-कविता को शैली और पद्धति के क्षेत्र में भी बहुत कुछ दिया है। परम्परा में एक नयी पद्धति की योजना करने वाले, प्रचलन को नई दिशा और नया प्रकाश देने वाले कवि निराला प्रबन्ध, मुक्तक, गीत, मुक्त छंद, नूतन छन्द, क्रान्ति (साहित्यिक और सामाजिक) आदि सभी क्षेत्रों में साहित्यिक अग्रदूत की भांति स्मरणीय रहेंगे।

निराला प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार थे। उन्होने साहित्य को गद्य और पद्य के रूप में जो कुछ दिया है मानो वह 'कला देवी' का वरदान है। उसमें प्रौढ़ता और निराला के व्यक्तित्व की छाप है। पाठक को निराला की किसी भी रचना को पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि वह शैली के एक विशेष मार्ग में भाषा और भाव के गुरुत्तम शिखर पर चढ़ता चला जा रहा है। उसे ऐसा लगता है कि वह मनीषा के खगोल में कवि की कल्पना के साथ किसी शिकारी पक्षी की भांति डुबकियां ले रहा है। सिहरता और विहरता पाठक निराला के संमोहन मंत्र के साथ खिचा चला जाता है और यह है निराला की काव्यकला।

काव्य (साहित्य) को महात्मा भर्तृहरि ने जब कभी संगीत और कला के साथ प्रतिष्ठित किया होगा तब किया होगा, आज तो साहित्य और कला को अभिन्न बतलाया जाता है और पाश्चात्य विद्वानों के साथ-साथ भारतीय विद्वान भी पांच ललित कलाओं में साहित्य की भी गणना करते है। साहित्य को चाहे विद्या कहा जाय चाहे कला, इससे उसका जीवन से सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होता क्योंकि विद्या और कला दोनों ही अपनी उपयोगिता के सिद्ध किये बिना अपने अस्तित्व को न तो सार्थक बना सकती हैं और न उसे कायम ही रख सकती हैं। विद्या का उपयोग तो स्वयंसिद्धि है, पर कला के उपयोग के सम्बन्ध में विवाद बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है।

जो लोग कला की उपयोगिता को ताक में रखकर 'कला कला के लिए' के नारे लगाते रहे हैं वे भी उपयोगिता के बिना कला के अस्तित्व की सम्भावना पर विचार करके निराश ही हुए हैं। जीवन में उपयोग का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। मानव के विकास में उपयोगिता का जो योग रहा है उसे समाज और संस्कृति के

इतिहासवेत्ता भलीभांति जानते है। जिन वस्तुओं को केवल कला-कलित कहा जाता है, जिनको शोभा के उपकरणों में सम्मिलित किया जाता है, वे भी और कुछ नहीं तो मानसिक उपयोग की वस्तु अवश्य हैं, मन के आह्लादन की वाहन हैं। उपयोगिता का भौतिक रूप तो है ही, अभौतिक भी है। मानसिक उपयोगिता केवल अध्यात्म-वादियों की धरोहर नहीं है, भौतिकतावादी भी उसे स्वीकार किये विना नहीं रह सकते, अन्यथा 'ऐस्थेटिक्स' निरर्थक हो जाये।

हां, कला को केवल उपयोगिता की तुला में तोलना भी समीचीन नहीं है। जहां ऐसा किया जाता है वहां कला का विकास अवरुद्ध हो जाता है। विकास की भावना कला की स्वतन्त्रता को महत्व देती है और उपयोगिता कला की सुरक्षा को। उपयोगिता और विकास दोनों ही कला के पक्ष हैं। वे एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं किन्तु दोनों की प्रधानता न तो अनिवार्य है और न सम्भव ही।

कला के जन्म के सम्बन्ध में दो मत हैं—एक तो यह कि कला का जन्म उपयोग से होता है और दूसरा यह कि अभिरुचि ही कला को जन्म देती है। इन दोनों के समन्वय से ही अधिक संगत मत प्रतिष्ठित हो सकता है। जिन टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से एक फूल बनाया जाता है वे चित्रकार की रुचि को तृप्त करने में अपना योग देती हैं और बाद में पलंगपोश या टेबिलपोश पर प्रतिष्ठित होकर घर की शोभा में भी योग देती हैं। इस उदाहरण के पीछे कला के जन्म का सिद्धान्त निहित है जिसमें समन्वय स्पष्ट है।

निराला कला को केवल प्रदर्शन की वस्तु नही मानते। उनकी दृष्टि में साहित्य क्या है ? यह इतना महत्वपूर्ण प्रश्न नही है जितना यह कि जीवन में उसका भारी उपयोग है। साहित्य जीवन को आत्मसात् करके फिर उसी को प्रेरित करने की क्षमता भी रखता है। निराला की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी रचना—कोई भी कविता जीवन के प्रति उपयोगिता के भाव से सज्जित है। 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास' अथवा 'जुही की कली' किसी को देखिये, प्रत्येक में जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण संदेश निहित है।

साहित्यिक संदेश लौकिक संदेश से भिन्न होता है क्योंकि उसमें शब्दों से ध्वनि निकलती है और लौकिक संदेश अभिधानमात्र होता है। लौकिक संदेश अभिधात्मक होने से स्थूल होता है। उसमें साहित्यिक संदेश के समान प्रभविष्णुता नहीं होती। निराला की प्रत्येक रचना किसी परिस्थिति की गम्भीरता से सम्बन्धित न होकर उनकी गहनतम अनुभूति का वाहन बनती है।

वह अनुभूति कैसी भी हो, निराला उसको उत्साह से धारण करते हैं। 'करुणा' और 'शोक' के झटके को वे उत्साह के बल से झेलते हैं। यही निराला के

व्यक्तित्व की विशेषता है और इसी विशेषता में उनकी कला को निखार मिलता है। उनके शब्दों में परिस्थिति का सुचारु आकलन मिलता है। प्रत्येक शब्द अपनी ध्वनि से प्रभावित करता हुआ पाठक को आत्मबल प्रदान करता है। उससे मानस कोमल हो सकता है, पिघल सकता है, किन्तु उसमें कोई गिरावट नहीं आ सकती। प्रत्येक शब्द मानों निराला की 'हुंकृति' को धारण करता है जो निराला के सम्मान, गौरव और उत्साह का द्योतक होता है। कवित्व और व्यक्तित्व का ऐसा संयोग असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है।

निराला की अदम्य आत्मशक्ति भौतिक आघातों में भी प्रकाशित रहती है और इसका कारण है आत्मा की एकता की अनुभूति। वे अपने को उस विराट सत्ता से भिन्न नहीं देखते जो बाहर देखते हैं उसी का अनुभव वे भीतर करते हैं। समता की यह भाव-भूमि निराला को उद्वेगजन्य वैषम्य से सुरक्षित रखती है। इसी भाव-भूमि पर उन्हें उत्साह मिलता है और इसी भाव-भूमि पर वे आत्म-शक्ति को संदेश रूप में वितरित करते हैं। 'तुलसीदास' में रत्नावली और तुलसीदास के सम्बन्ध से जो प्रकाश उत्पन्न हुआ है वह निराला का आत्म-दर्शन मात्र है। 'तुलसीदास' के विषय वातावरण में कवि ने जिस दिव्य शान्ति की दृष्टि कराई है उसमें निराला की सांस्कृतिक आभा का साक्षात्कार सहज ही में किया जा सकता है।

कला से विरहित ये अनुभूतियां। ये संस्कार, और आत्मा का यह व्यापक वैभव—सबके सब क्या हुए होते? कवि की कला ने हिन्दी-जगत् को वह उपहार दिया है जो न केवल साहित्य की रत्न-राशि में परिगणित है वरन् संस्कृति-शिखरिणी की शिखर-परम्परा का अपूर्व गौरवमय निर्वाह है।

निराला हमारे अपने समय के कलाकार हैं। इसलिए हम उनको व्यक्तिगत रूप में भी जानते हैं और कलाकार के रूप में भी। उनकी कला का जन्म उनके व्यक्तित्व में हुआ है और उनके व्यक्तित्व का परिचय उनकी कला से बड़ी सरलता से मिल सकता है। वैसे तो प्रत्येक कलाकार अपनी कला में निहित रहता है और उससे उसका समुचित परिचय मिल सकता है, उदाहरण के लिए कालिदास, बाण-भट्ट; कबीर, तुलसीदास, प्रसाद, महादेवी आदि; किन्तु निराला के सम्बन्ध में यह तथ्य कुछ अधिक उग्र होकर सामने आता है। इसका एकमात्र कारण मेरी समझ में निराला की वह सचाई है जो उनके काव्य का धर्म बनी हुई है। इस सचाई का विश्लेषण उनके जीवन की अनेक घटनाओं और परिस्थितियों को सामने लाये बिना नहीं किया जा सकता। परिस्थितियों ने 'निराला' के व्यक्तित्व को बनाया और उससे उनकी काव्यप्रभा विकसित हुई अतएव निराला की काव्य-कला की पृष्ठभूमि में उनके व्यक्तित्व का अध्ययन भी आवश्यक है।

इस भूमिका के अन्त में यह कह देना उचित ही होगा कि निराला का अद्वैत-दर्शन उनके प्रेम-दर्शन से मेल रखता है। इसी मेल की भूमि पर निराला

समाज की खाई को पाटने का उपक्रम करते हैं। निराला के प्रेम की भूमि 'लौकिक' से 'अलौकिक' तक फैल कर भक्ति की सीढ़ी पर भी जा पहुंचती है। रहस्यवादी उद्‌गारों में निराला इसी भाव-भूमि पर विहार करते मिलते हैं। इनकी अभिव्यक्ति में प्रतीकों की छटा भी मनोरम है।

प्रस्तुत निबन्ध की लेखिका ने निराला के कवित्व को कुछ चुने हुए परिपार्श्वों में देखने का प्रयत्न किया है। प्रथम परिपार्श्व में व्यक्तित्व का निरीक्षण किया गया है और उसमें परिस्थितियों के योग को देखा गया है। दूसरे परिपार्श्व में काव्य का विकास दिखलाया गया है। तीसरे परिपार्श्व में सामाजिक पृष्ठभूमि है। चौथे में दार्शनिक पीठिका है और पाँचवें में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा छठा अभिव्यंजना-शिल्प से सम्बद्ध है जिसमें भाषा, छंद अलंकार और प्रतीकों पर विचार किया गया है। सातवें परिपार्श्व में कवि का स्थान निर्धारित किया गया है।

लेखिका ने जानबूझ कर कुछ चुने हुए परिपार्श्वों में निराला को देखना चाहा है, अन्यथा निराला पर 'डिसर्टेशन' ही क्या 'थीसिस' निकल रही हैं। जो हो यह मेरा क्षुद्र प्रयास है और मुझे सन्तोष है कि मैंने निराला को 'मनीषा की नोक' से परखा है। यदि मेरा कार्य प्रोत्साहित हुआ तो 'निराला' को अन्य परिपार्श्वों में देखने का प्रयत्न भी करूँगी।

विषय-सूची

: १ :

निराला : व्यक्तित्त्व एवं परिस्थितियाँ

महाकवि निराला का जन्म संवत् १९५३ की वसंत पंचमी को बंगाल प्रान्त के मेदिनीपुर जिले में, महिषादल में एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। उनके पिता पण्डित रामसहाय त्रिपाठी महिषादल में राजकर्मचारी थे। राजदरबार की उनके पिता पर कृपा-दृष्टि प्रारम्भ से ही रही थी। निराला का पालन-पोषण व उनकी प्रारम्भिक शिक्षा राजपुत्रों के साथ ही सम्पन्न हुई। तीन वर्ष की अल्पावस्था में ही बालक निराला के जीवन में एक कभी पूरा न होने वाला अभाव छोड़कर माता दिवंगत हुई। माँ की ममता व स्नेह से वंचित बालक प्रारम्भ से ही दुःख झेलने व संघर्ष करने के लिए सन्नद्ध हो गया। माँ के अभाव से निराला के जीवन में आत्म-निर्भरता व विपत्तियों में भी अडिग रहकर उनका विरोध करने की क्षमता का संचार हुआ।

पर इसका आशय यह नहीं है कि उनका व्यक्तित्व विकास को न पा सका, तथ्य तो यह है कि इन अभावों की भूमि में विकसित निराला का व्यक्तित्व असाधारण था, उनके शारीरिक गठन, विस्तृत वक्ष, हृष्ट-पुष्ट शरीर, सुगठित मांस-पेशियों ने उनके व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। महाकवि प्रसाद ने मनु के व्यक्तित्व और शरीर के गठन के लिए जिस शब्दावली का प्रयोग किया है, वही ठीक निराला के व्यक्तित्व पर लागू होती है—

अवयव की दृढ़ मांसपेशियाँ,
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार,
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार।[1]

डॉ० रामविलास शर्मा ने भी निराला के व्यक्तित्व-सम्बन्धी 'वह सहज विलम्बित मंथर गति जिसको निहार, गजराज लाज से राह छोड़ दे एक बार' जैसी पंक्तियाँ लिखकर जहाँ एक ओर उनके सुगठित व्यक्तित्व की ओर संकेत किया है वहाँ दूसरी ओर उनकी मंद, मंथर गति और मस्ती को भी कह दिया है। वस्तुतः निराला का यह व्यक्तित्व उम्र के उतार के साथ भी आकर्षक बना रहा। उनकी बड़ी-बड़ी स्वप्निल, स्नेहसिक्त आँखें संसार को सिक्त करती रहीं। उनका स्वयं का

१. कामायनी, चिन्ता सर्ग, पृ० ४

स्नेह कभी चुका नहीं, हाँ, उनका व्यक्तित्व संघर्षगामी पगडंडियों की भूलभुलैयों में पड़कर इस स्थिति तक पहुंचा तो उन्होंने लिखा है—

"स्नेह निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है।"[१]

निराला पर अपने पिता का भी कम प्रभाव नहीं पड़ा था। पत्नी के अभाव में त्रिपाठी जी से आशा की जा सकती थी कि वे अपने मातृविहीन एकमात्र पुत्र को अपने सम्पूर्ण स्नेह से सिक्त कर देंगे, परन्तु वे स्वभाव से ही रुक्ष व कठोर थे। साथ ही सौ सिपाहियों पर जमादार होने के कारण उनकी प्रकृति अधिकार तथा अनुशासन रखने की थी। अतः निराला को अधिकांशतः पिता के कोप का भाजन बनना पड़ता था। स्वयं निराला का कथन था "मारते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि वे दो विवाह के बाद पाये हुए इकलौते पुत्र को मार रहे हैं। मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था; और प्रहार की हद भी मालूम हो गई थी।"[२] यह हद यहाँ तक थी कि "जब बालक बेसुध हो गया, तभी ताड़न-क्रिया बन्द हुई।"[३] पितृस्वभाव की यह उद्धतता निराला को पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई। बाल्यकाल की इन परिस्थितियों ने निराला को सहिष्णु, निर्भीक व आत्म-विश्वासी बना दिया था, साथ ही विद्रोही भी। डॉ० शर्मा ने उनके व्यक्तित्व की इसी निर्भीकता का परिचय इस प्रकार दिया है—"निराला जी के व्यक्तित्व में निर्भीकता और उद्दण्डता कूट-कूट कर भरी थी। श्मशान और नगर में वह पूर्ण स्वच्छन्दता से विचरते थे। डलमऊ में अवधूत का टीला उनका ठीहा था। महिषादल में भी वह मसान में घूमने जाया करते थे। बरसात की अंधेरी रात में खेतों और मैदानों को पार करते हुए उन्हें जरा भी भय नहीं होता था। उनकी निर्भीकता दुःसाहस की सीमा तक पहुची हुई थी। इसका असर उनकी बातचीत पर भी था। वे बनावटी शिष्टाचार को तोड़ते हुए निर्द्वन्द्व भाव से बातें करते थे; सुनने वाला क्या सोचे और समझेगा, इसकी उन्हें परवाह नहीं थी।"[४] उनकी इसी आत्मविश्वास व निर्भीकता की प्रवृत्ति का परिचय उनके उस संस्मरण से मिलता है जब कि महात्मा गांधी ने इन्दौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति के पद से दिये अपने भाषण में कहा कि "हमारी राष्ट्र-भाषा में रवीन्द्रनाथ जैसे कवि ने क्यों जन्म नहीं लिया?"

निराला ने यह भाषण पढ़ा कि वे भिन्ना उठे। अब वे गांधी से भिड़ने को बेचैन। पहुंचे और महादेव भाई से बोले—"राजनीतिज्ञ गांधी से मिलने की मुझे

१. अणिमा. पृ० ५५
२. डा० रामविलास शर्मा, निराला पृ० ४६
३. वही
४. वही पृ० ४५

चाह नहीं, पर मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति से मिलना चाहता हूं।...मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि तुमने महाकवि निराला का साहित्य पढ़ा ? इस पर वे कहें कि नहीं, तो मैं कहूंगा कि तुम अभागे हो।"[१]

इसी प्रसंग में निराला के आत्मसम्मान व निर्भीकता सम्बन्धी एक घटना उल्लेखनीय है। लखनऊ में हिन्दी-हितैषी राजा साहब आये। उनकी छत्रछाया में अनेकानेक कवि व साहित्यकार पल रहे थे, इसी कारण वे स्वयं को भी साहित्य-मर्मज्ञ समझते थे। हिन्दी के लेखकों के प्रति उनका बहुत ही अवज्ञा व उपेक्षा का भाव था। लखनऊ के एक प्रकाशक-सम्पादक-साहित्यिक ने उनके सम्मान में चाय आदि का प्रबन्ध किया। अनेक साहित्यकार भी बुलाये गये। जब राजा साहब आये तो उनके स्वागत में सब लोग उठकर खड़े हो गये, पर निराला निश्चिन्त भाव से बैठे रहे। एक वयोवृद्ध साहित्यिक सबका परिचय कराने लगे—गरीब परवर यह फलाने हैं, यह फलाने हैं, यह फलाने। इसी गरीब परवर की धुन में वे निराला जी तक पहुंचे और अपने सम्बोधन को दुहराया ही था कि निराला उठ गये और राजा साहब की ओर उन्मुख हो कर बोले 'हम वह हैं, हम वह हैं जिनके बाप-दादों की पालकियाँ तुम्हारे बाप-दादा उठाया करते थे।'[२] राजा साहब की दृष्टि से तुरंत ही अवज्ञा-भाव गायब हो गया।

पिता के अनुशासन में जकड़े रहने के कारण निराला में विद्रोह की भावना का जन्म हुआ। इसके अतिरिक्त निराला का जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की एक निम्न जाति में हुआ था, जिसे हीन दृष्टि से देखा जाता था। जातिगत हीनता की भावना भी उनकी विद्रोह-वृत्ति को जाग्रत करने में सहायक हुई। इसी विद्रोही वृत्ति के फलस्वरूप निराला ने समाज की रूढ़ियों व परम्पराओं का विच्छेद किया। यहाँ तक कि अपनी पुत्री सरोज का विवाह भी उन्होंने जातिगत वैवाहिक पद्धति से भिन्न ढंग से किया। विवाह में न तो दहेज दिया, न बरात को बुलाया तथा स्वयं निराला ने ही वैवाहित मन्त्रोच्चारण किया। 'सरोज-स्मृति' में उन्होने स्पष्ट लिखा है :—

"पर नहीं चाह
मेरी ऐसी, दहेज देकर
मैं मूर्ख बनूं यह नहीं सुघर
बारात बुलाकर मिथ्या-व्यय
मैं करूं, नहीं ऐसा सुसमय
तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम
मैं सामाजिक योग के प्रथम,

१. महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ४७
२. डा० रामविलास शर्मा, निराला, पृ० ४६

लग्न के पढ़ूंगा स्वयं मंत्र
यदि पण्डितजी होंगे स्वतंत्र ।"[१]

इसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी उन्होंने क्रान्ति उपस्थित की, छन्दों की पूर्वागत परम्परा को विच्छिन्न किया व मुक्त-छन्द का प्रयोग किया। निराला का कहना था "हिन्दी में समझ वाला युग अभी नहीं आया है। इसीलिये नये साहित्य का विरोध होता है। रूढ़ियों से अभी जन-मस्तिष्क पूर्ववत् जकड़ा हुआ है। रूढ़ियों पर बार-बार प्रहार द्वारा इसकी शृंखला तोड़ देनी चाहिए।"[२]

चौदह वर्ष की आयु में ही निराला का विवाह सुन्दर व गुणवती कन्या मनोहरा देवी के साथ सम्पन्न हुआ। विवाह के पूर्व निराला को बंगाली, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था, पर विवाहोपरान्त विदुषी पत्नी के हिन्दी-ज्ञान के समक्ष अपने को तिरस्कृत समझ कर 'सरस्वती' की प्रतियों को लेकर उन्होंने हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। स्वयं निराला ने गीतिका के समर्पण में लिखा है "जिसकी हिन्दी के प्रकाश से, प्रथम परिचय के समय, मैं आँखें नहीं मिला सका—लजा कर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प से, कुछ काल बाद देश से विदेश, पिता के पास चला गया था और उस हिन्दी-हीन प्रान्त में, बिना शिक्षक के, 'सरस्वती की प्रतियाँ लेकर, पद-साधना की और हिन्दी सीखी थी।' बंगाली कवि निराला को हिन्दी का कवि बनाने का सम्पूर्ण श्रेय उनकी पत्नी को प्राप्त है। वस्तुतः "श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला को" निराला बनाने में उनकी पत्नी का उतना ही हाथ है जितना कालिदास को कालिदास बनाने में विद्योत्तमा का, और तुलसीदास को तुलसीदास बनाने में रत्नावली का।"[३] पत्नी प्रेरणा से ही निराला ने हिन्दी में कविता करना प्रारम्भ किया।

लेकिन निराला की वह जीवन-सहचरी हिन्दी को निराला का वरदान प्रदान कर, उन्हें जीवन-यात्रा में एकाकी छोड़कर, इक्कीस वर्ष की अल्पायु में ही उस महायात्रा के लिए प्रयाण कर गई जहाँ से कोई वापस नहीं लौटता है। पत्नी के इस असामयिक निधन ने निराला की कोमल वृत्तियों पर कुठाराघात किया। उनकी लौकिक शृंगार-भावना को 'दिव्य-शृंगार' की ओर प्रेरित किया।[४] यही कारण है कि 'जुही की कली' में शृंगार का जिस प्रकार का वासनात्मक चित्रण है, बाद की रचनाओं में नहीं मिलता।

---

१. अनामिका, सरोज-स्मृति, पृ० १३१
२. महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० १४०, संस्मरण ५८
३. क्रांतिकारी कवि निराला—बच्चनसिंह, पृ० ७
४. गीतिका के समर्पण में निराला ने लिखा है—"जिसने अन्त में अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण-परिणीता की तरह मिलकर मेरे जड़-हाथों को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य शृंगार की पूर्ति की...उस मनोहरादेवी को।"

पत्नी की मृत्यु के उपरान्त ही चाचा आदि अन्य पारिवारिक-सदस्य भी कालकवलित हुए। चाचा के एवं स्वयं के, दोनों परिवारों का भार निराला पर आ पड़ा। अर्थ के विषम अभाव के कारण वैसे ही वे चिंतित थे। आर्थिक विपन्नता के कारण ही वे अपनी मातृविहीना पुत्री का उपचार सुचारु रूप से न कर पाये, उसके अन्तिम क्षण तक निरुपाय दर्शक बने देखते रहे। सरोज-स्मृति में उन्होंने लिखा है:—

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका।[1]

उन्हें इस बात का खेद अन्त तक रहा कि वह अपनी पुत्री का उत्तम पोषण नहीं कर पाये—

"अस्तु मैं उपार्जन को अक्षम
कर नहीं सका पोषण उत्तम।"[2]

अर्थाभाव के कारण ही अपने पुत्र रामकृष्ण की शिक्षा का उचित प्रबन्ध वे न कर पाये। पुत्री व पुत्र, दोनों के प्रति ही अपने पितृ धर्म का पालन वे न कर पाये।

इन पारिवारिक विपत्तियों के अतिरिक्त साहित्यिक क्षेत्र में भी उनकी कटु आलोचनाएँ हुईं। उनके मुक्त छन्द का अत्यधिक विरोध हुआ, उसे केंचुआ छन्द, रबड़ छन्द आदि कहकर उपहास किया गया। 'विशाल भारत' के सम्पादक बनारसीदास चतुर्वेदी ने तो उनका घोर विरोध किया, यहाँ तक कि उनके एक निबन्ध 'वर्तमान धर्म का शीर्षक' 'साहित्यिक सन्निपात' बदलकर उसे प्रकाशित किया व आलोचकों से उस पर सम्मति देने को कहा। इस प्रकार उन्हें आजीवन परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ा व दुःख सहने पड़े। 'सरोज-स्मृति' में उन्होंने लिखा है—

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूं आज जो नहीं कही ?[3]

लेकिन निराला ने परिस्थितियों के सम्मुख कभी हार स्वीकार नहीं की। जीवन-संघर्ष में वे अप्रतिहत भट रहे। वे टूट गये पर झुके नहीं। जीवनपर्यन्त दुःख सहते-सहते अंतिम दिनों में उनका मस्तिष्क भी आंशिक विकार की सूचना देने लगा था, विघटित होने लगा था। निराला की यह मानसिक विभ्रम व विक्षिप्तता की अवस्था उनके जीवन व्यापी संघर्षों का ही सामूहिक प्रतिफलन थी।

निराला सदैव ही आर्थिक दृष्टि से घोर विपन्नता की स्थिति में रहे, लेकिन उन्होंने कभी मितव्ययता से कार्य नहीं किया। अर्थाभाव ने उन्हें अधिक उदार-हृदय

---

१. अनामिका, सरोज-स्मृति, पृ० १२०
२. वही, पृ० १२०
३. वही पृ० १३४

बना दिया था जब भी उन्हें कहीं से कुछ अर्थप्राप्ति होती थी तो या तो वे उसे किसी दीन-दुखित को दे देते थे अन्यथा अतिथि सत्कार में व्यय कर देते थे। घायल की गति घायल ही जानता है, निराला स्वयं जीवन में अनेक दुःख व आघात सहने के कारण अत्यधिक संवेदनशील हो गये थे; जहाँ भी वे किसी पीड़ित व्यक्ति को देखते थे उसकी येन-केन प्रकारेण अधिकाधिक सहायता करने का प्रयास करते थे। इसी कारण उन्हें 'औघड़दानी' व 'महाभारत का कर्ण' आदि विशेषणों से विभूषित किया गया। इस प्रसंग में निराला की उदारता से संबंधित दो-एक घटनाएँ उल्लेखनीय हैं। एक बार उत्तरप्रदेश की सरकार ने उनकी एक पुस्तक पर २१०० रुपये का पुरस्कार दिया। निरालाजी ने इन रुपयों को न देखा, न एक बार छूआ, दूर से ही दान कर दिया-एक स्वर्गीय साहित्यिक मित्र की विधवा पत्नी को पचास रुपये मासिक के हिसाब से मिलते रहेंगे क्योंकि इन स्वर्गीय मित्र से निराला जी ने सिर्फ २१) उधार लिये थे।[१]

इसी प्रकार एक बार विकट आर्थिक संकट की स्थिति में जब उन्होंने कई दिनों से भोजन नहीं किया था, उन्हें एक प्रकाशक से १०४) प्राप्त हुए, लेकिन मार्ग में ही उन्होंने एक भिखारिणी की भिक्षावृत्ति को समाप्त करने के लिए दे डाले। यहाँ तक कि तांगे वाले को देने के लिए भी उनके पास पैसे नहीं बचे।[२]

निराला के व्यक्तित्व पर सर्वाधिक प्रभाव 'समन्वय' के सम्पादन-काल में विवेकानन्द व स्वामी रामकृष्ण परमहंस के विचारों का पड़ा। स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त के दोनों मूल तत्वों-शक्ति-साधना व करुणा का निराला पर प्रभूत प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि एक ओर वे वज्रादपि कठोर थे, दूसरी ओर कुसुमादपि मृदु। उनके व्यक्तित्व में पौरुष तथा करुणा, दोनों तत्व एक साथ पाये जाते हैं। "जिस ऐतिहासिक बोध, जातीय-विशेषता और हिन्दुत्व का उद्घोष युग-प्रवर्तक विवेकानन्द ने किया उसकी प्रतिध्वनि, मूलध्वनि बनकर निराला के 'शिवाजी के पत्र', 'जागो फिर एक बार', 'दिल्ली', 'यमुना' आदि कविताओं में मिलती है।"[३] निराला स्वयं अपने में व स्वामी विवेकानन्द में अत्यधिक साम्य का अनुभव करते थे। उनका कहना था कि "जब मैं इस प्रकार बोलता हूं, तो यह मत समझो कि निराला बोल रहा है। तब समझो, मेरे भीतर से विवेकानन्द बोल रहे हैं। यह तो तुम जानते ही हो कि मैंने स्वामी विवेकानन्द जी का सारा वर्क हजम कर लिया है।"

१. महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ५१
२. महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४८-५६
३. प्रो० धनंजय वर्मा, निराला : काव्य और व्यक्तित्व, पृ० ५२
४. महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ११४ संस्मरण ३७

इस प्रकार विभिन्न पारिवारिक व सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव से निर्मित निराला का व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य में अप्रतिम एवं अद्वितीय है। उनके इसी व्यक्ति का उन्मेष उनके काव्य में हुआ है। 'हिन्दी में ही क्या, सम्भवत: किसी भी अन्य भाषा में ऐसा दूसरा व्यक्ति ढूंढ़ने से भी नहीं मिलेगा, जिसका व्यक्तित्व और कवित्व-जल-वीचि-सम कहियत भिन्न, न भिन्न'[1] की अभिधा प्राप्त कर सके।

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २५ नवम्बर १९६२, पृ० २४

: २ :

निराला का काव्य-विकास

निराला सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के कलाकार थे। कविता, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, रेखाचित्र, आलोचना आदि विविध क्षेत्रों में उनकी लेखनी का प्रसार हुआ है, किन्तु इनकी कीर्तिवल्लरी प्रमुखतः कविता की धरा पर ही फूली-फली है। कहने की आवश्यकता नहीं कि निराला एक अप्रतिम कवि थे। उनकी कविता का जो स्वरूप हमारे सामने आता है उसमें विकास की अनेक पद्धतियां और कोटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। दो खण्ड काव्यों (राम की शक्ति-पूजा और तुलसीदास) को छोड़कर निराला ने मुक्तक ही लिखे हैं, जिनका प्रकाशन समय-समय पर संग्रह रूप में हुआ है।

निराला के काव्य-जीवन का प्रारम्भ 'जुही की कली' (१९१६) से होता है। 'जुही की कली' द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक एवं आदर्शवादी दृष्टिकोण के प्रतिरोध में लिखी गई थी, आलोचकों की ऐसी धारणा है। इसके बाद से ही निराला की काव्य-धारा निरन्तर विकासशील रही है। ऐतिहासिक दृष्टि से निराला की काव्य-रचनाओं को दो कालों में विभक्त कर सकते हैं—(१) १९४० के पूर्व की काव्य-रचनाएँ और (२) १९४० के बाद की काव्य-रचनाएँ।

पूर्ववर्ती कृतियाँ

निराला की पूर्ववर्ती काव्य-कृतियाँ परिमल, गीतिका, अनामिका और तुलसीदास हैं। इनमें प्रकृति, समाज, दर्शन, संस्कृति, देश-प्रेम, शृंगार आदि अनेक विषयों और रसों से सम्बद्ध रचनाएँ संकलित हैं। भाव तथा शैली, दोनों दृष्टियों से ही यह काल निराला-काव्य का उत्कर्ष-काल रहा है। इसी काल में तुलसीदास, राम की शक्ति-पूजा जैसे सफल प्रबन्ध-काव्यों की रचना हुई है।

परवर्ती कृतियाँ

निराला के परवर्ती काव्य-संग्रह में हैं—कुकुरमुता, अणिमा, वेला, नये पत्ते, अर्चना, आराधना और गीतगुंज। इन कृतियों में निराला का परिवर्तित जीवन-दर्शन स्पष्ट है। कवि इस समय तक अविरत जीवन संघर्षों के कारण जर्जरित हो गया था, उसका मस्तिष्क विकारग्रस्त हो गया था। जिन आस्थाओं एवं विश्वासों को लेकर

वह चला था, सामाजिक संघर्षों के कारण उनमें परिवर्तन एवं मोड़ आ गया। अस्तु, अब समाज के प्रति कवि का दृष्टिकोण व्यंग्यात्मक एवं उपहासात्मक हो गया। समाज के कुत्सित नग्न यथार्थ को चित्रित करने में ही उसे संतुष्टि का अनुभव हुआ। वह कल्पना के स्वर्ग से उतर कर यथार्थ की कठोर भूमि पर आ गया। उसका सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण भी (जिसका परिचय निराला की प्रारम्भिक रचनाओं में मिलता है) अब आहत हो गया। 'जुही की कली' के सौन्दर्य का चितेरा कवि अब कुकुरमुत्ता में ही सौन्दर्य-दर्शन करने लगा।

निराला की इन परवर्ती काव्य-रचनाओं में यथार्थ-चित्रण एवं हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति ही मुख्य रूप से मिलती है। अनेक प्राकृतिक, दार्शनिक, शृंगारपरक एवं प्रशस्तिमूलक कविताएँ भी परवर्ती काल में लिखी गईं। इस काल की अन्तिम तीन कृतियों (अर्चना, आराधना, गीत-गुंज) में तो प्रार्थनात्मक एवं भक्तिपरक गीतों को ही प्रधानता मिलती है।

निराला की प्रारम्भिक रचनाओं में 'अनामिका' का नाम पहले आता है, किन्तु वह 'अनामिका' आज उपलब्ध नहीं है। जो 'अनामिका' आज हमें प्राप्त होती है, वह बाद का प्रकाशन है। इस दृष्टि से पहली रचना 'परिमल' मानी जाती है।

परिमल

यह संग्रह निराला के सर्वोत्कृष्ट काव्य-संग्रह के रूप में मान्य है। इसका प्रकाशन उस समय हुआ जबकि 'हिन्दी के उद्यान में प्रभात-काल ही की स्वर्णपटा फैली'[1] थी। यह संग्रह अपने विषय-वैविध्य और विषय-व्यापकत्व की दृष्टि से अद्वितीय है। 'परिमल' का कवि एक ओर तो प्रकृति एवं सौन्दर्य की कान्ति का स्रष्टा है दूसरी ओर वह क्रांतिकारी एवं विद्रोही भी है। यह क्रांति भावात्मक या वैचारिक क्रांति ही नहीं है, अपितु शैलीगत, छंदगत क्रांति भी है। छंद-रचना की दृष्टि से इस संकलन की ७८ कविताओं को निराला ने तीन खंडों में विभक्त किया है।

प्रथम खंड में सममात्रिक सान्त्यानुप्रास रचनाएँ हैं, जो हिन्दी के लक्षण ग्रंथों के आधार पर निर्मित हुई हैं। द्वितीय खण्ड में विषम-मात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताएँ हैं तथा तृतीय खंड में स्वच्छंद छंद या मुक्त छंद में लिखी गई कविताएँ हैं। विषय की दृष्टि से भी इन कविताओं को अनेक भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) प्रार्थनापरक तथा दर्शन से संबंधित, (२) देशप्रेम तथा उद्‌बोधन से सम्बंधित, (३) समाज से सम्बधित, (४) प्रेम तथा नारी-सौन्दर्य से सम्बन्धित रचनाएँ।

प्रार्थनापरक तथा दर्शन से संबंधित रचनाएँ

'सेवा', 'निवेदन', 'शेष', 'पतनोन्मुख', 'वृत्ति', 'प्रार्थना', 'अध्यात्मफल', 'कण', 'हमें जाना है जग के पार', 'पारस' 'माया', 'तुम और मैं' आदि चिंतन-प्रधान

---

१. परिमल, भूमिका, पृ० १०

आध्यात्मिक एवं अनुभूतिमय कविताएँ हैं। 'खेवा' में कवि इस अपार भव-पारावार में डगमगाती हुई अपनी जीवन-नौका को सँभालने के लिए खेवनहार-प्रभु से प्रार्थना करता है—

> डोलती नाव, प्रखर है धार,
> संभालो जीवन-खेवनहार।[1]

'पारस' में कवि सर्वव्यापी प्रभु का स्तवन करते हुए कहता है—

> जीवन की विजय, सब पराजय,
> चिर-अतीत आशा, सुख, सब भय,
> सब में तुम, तुममें सब तन्मय,
> कर-स्पर्श-रहित और क्या है? अपलक असार।
> मेरे जीवन पर, प्रिय, यौवन-वन के वहार।[2]

इस संग्रह की 'तुम और मैं' कविता में निराला की दार्शनिक विचारधारा की अभिव्यक्ति बड़े सुन्दर ढंग से हुई है। 'तुम और मैं' में 'तुम' का प्रयोग ब्रह्म के लिए और 'मैं' का प्रयोग जीव के लिए हुआ है। विभिन्न रूपकों के द्वारा कवि ने आत्मा और परमात्मा के संबंधों को स्पष्ट किया है—

> तुम तुंग-हिमालय-शृंग
> और मैं चंचलगति सुरसरिता।
> तुम विमल हृदय उच्छ्‌वास
> और मैं कांतकामिनी-कविता।[3]

इसी प्रकार 'कण' कविता में निराला ने ब्रह्म और जगत् के संबंध में अपनी जिज्ञासा की अभिव्यक्ति की है। ब्रह्म इस संसार में व्याप्त है, अथवा यह सम्पूर्ण संसार उस ब्रह्म में व्याप्त है, दोनों में भेद है या अभेद? परमात्मा इस संसार का कारण है अथवा कार्य? अन्य दार्शनिकों के समान निराला ने भी इसे केवल रहस्य के रूप में ही प्रकट किया है—

> तुम तो अखिल विश्व में
> या यह अखिल विश्व है तुममें,
> अथवा अखिल विश्व तुम एक
> यद्यपि देख रहा हूँ तुम में भेद अनेक?[4]

देशप्रेम तथा उद्‌बोधन से संबंधित रचनाएँ

'परिमल' की देशप्रेम सम्बन्धी कविताओं में 'जागो फिर एक बार', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र', तथा यमुना के प्रति विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कविताओं के

---

१. परिमल, पृ० ३०
२. परिमल, पृ० ७१
३. वही, पृ० ८४
४. वही पृ० १७१

माध्यम से गौरवमय अतीत का स्मरण दिलाते हुए जागरण का मंत्र फूँका है। 'जागो फिर एक बार' में कवि देशवासियों को अंग्रेजों के विरुद्ध उत्तेजित करता हुआ कहता है—

शेरों की मांद में
आया है आज स्यार—
जागो फिर एक बार !
सिंह की गोद से
छीनता रे शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह
रहते प्राण ? रे अजान !
एक शेष माता ही
रहती है निर्निमेष—
दुर्बल एक—
छीनती सन्तान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आंसू बहाती है ।[1]

'बादल राग' तथा 'आह्वान' कविताओं में कवि ने समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए आवश्यक क्रांति का आह्वान किया है। 'बादलों को' विप्लव के जलधर और 'विप्लव के वीर' कहकर बादलों के व्याज से विप्लव को ही आमंत्रण दिया है। इसी प्रकार 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' कहकर 'आह्वान' में भी क्रांति का ही आह्वान किया है। इन सभी कविताओं में देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना का उन्मेष हुआ है।

प्रेम और नारी सौन्दर्य से संबंधित रचनाएँ

'परिमल' की 'प्रिया के प्रति', 'उसकी स्मृति', 'भ्रमरगीत', 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'पंचवटी-प्रसंग' आदि कविताएँ इसी कोटि की हैं। 'प्रिया के प्रति', 'भ्रमरगीत', 'उसकी स्मृति' आदि कविताओं में कवि ने अपनी प्रणयिनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। संयोग और वियोग, दोनों अवस्थाओं के चित्र कवि ने इन लघु कविताओं में चित्रित कर दिये हैं। संयोगकाल में मौन कवि अपलक दृष्टि से प्रिया को देखता रहता है—

मैं न कभी कुछ कहता
बस, तुम्हें देखता रहता ।[2]

लेकिन अब वियोग की अग्नि में दग्ध होकर उसका हृदय निर्मल हो गया है।

---

१. परिमल, पृ० २०३-२०४
२. परिमल, पृ० ६४

वह संध्यासुन्दरी परी-सी
धीरे—धीरे—धीरे,[१]

समाज से सम्बन्धित रचनाएँ

निराला केवल छायावादी कवि ही नहीं हैं, प्रगतिवादी भी हैं। कोरी कल्पना में लीन होकर वे समाज को नहीं भुला बैठे हैं। मानव और समाज सदैव उनकी दृष्टि में रहे हैं। 'विधवा, भिक्षुक, दीन, वह' आदि कविताओं में उनकी सामाजिक चेतना का ही प्रस्फुटन हुआ है। ये कविताएं अद्वैतवेदान्ती कवि निराला के मानवतावादी दृष्टिकोण को हमारे समक्ष उपस्थित करती हैं। वस्तुतः उनका अद्वैतवाद ही उनके मानवतावाद का प्रेरक रहा है। दीन-हीन मानव के प्रति उनका हृदय सदा सकरुण रहा है। निम्नलिखित पंक्तियों में उन्होंने भारतीय विधवा का अत्यन्त मार्मिक चित्र खींचा है—

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीपशिखा सी शांत-भाव में लीन,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी लीन—
दलित भारत की विधवा है।[२]

इस कविता में कवि ने भारतीय विधवा की शोक-जनक स्थिति का परिचय देते हुए भारतीय समाज की रूढ़ियों पर भी व्यंग्य किया है। इसी प्रकार 'भिक्षुक' कविता में भिक्षुक का चित्र प्रस्तुत करता हुआ कवि समाज में उसकी स्थिति और दशा को नहीं भुलाता है। इस प्रकार के अनेक यथार्थवादी मार्मिक चित्र अंकित किये हैं। इन चित्रों में यथार्थवादी झांकियां पाना दुष्कर नहीं है।

इन सब के अतिरिक्त परिमल की 'कवि' एवं 'कविता' शीर्षक कविताओं में क्रमशः कवि-कर्म की दुष्करता तथा कविता के स्वरूप का विश्लेषण हुआ है।

इस प्रकार परिमल अपने विषय-वैविध्य, भाव-सौन्दर्य, अभिव्यंजना-कौशल आदि के कारण छायावादी कविता का अग्रदूत है।

अनामिका

यह निराला का द्वितीय काव्य-संग्रह है। 'अनामिका' नाम का एक काव्य-संग्रह सन् १९२३ में भी प्रकाशित हो चुका था, जिसकी अधिकांश कविताओं को १९३० में प्रकाशित 'परिमल' काव्य-संग्रह में भी पुनः प्रकाशित किया गया। लेकिन पन्द्रह वर्ष बाद सन् १९३८ में प्रकाशित यह अनामिका पहली अनामिका से सर्वथा भिन्न है। इस विषय में कवि ने स्वयं द्वितीय अनामिका के प्राक्कथन में लिखा है 'अनामिका नाम की पुस्तिका मेरी रचनाओं का पहला संग्रह है।...इस 'अनामिका'

१. परिमल, पृ० १३५
२. वही, पृ० १२६

की अच्छी कृतियाँ बाद में 'परिमल' नाम के संग्रह में आ गई थी, अधूरी निकाल दी गई थी। इस 'अनामिका' में उसका कोई चिह्न अवशिष्ट नहीं।

'अनामिका' की रचनाएँ 'परिमल' की रचनाओं की अपेक्षा कला, भाव और शैली की दृष्टि से अधिक प्रौढ़ हैं। 'परिमल' की कविताएँ कवि का पहला काव्योच्छ्वास थी। अनामिका तक पहुंचते-पहुंचते भाषा, छन्द, शैली और विचार सब में उसने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली है। जहाँ तक शैली (Dicton) का सम्बन्ध है, वह तुलसीदास और कालिदास की प्रौढ़ रचनाओं से प्रभावित है। एक महान कला-साधना को लेकर वह एक नये काव्य जीवन में प्रवेश कर रहा है।'[1] इस संग्रह की रचनाओं में विषय-वैविध्य है। विषय की दृष्टि से इन कविताओं को स्थूल रूप से इस प्रकार विभक्त कर सकते हैं—१. रहस्यात्मक एवं दार्शनिक, २. सामाजिक, ३. सांस्कृतिक, ४. प्रकृतिपरक, ५. वैयक्तिक शोक, नैराश्य और अवसाद को प्रकट करने वाली।

रहस्यात्मक एवं दार्शनिक कविताएँ

अनामिका की, 'प्रेयसी', 'प्रेम के प्रति', 'रेखा', 'प्याला', 'मरण-दृश्य', 'अपराजिता', 'प्राप्ति', नारायण मिले हंस अन्त में' आदि रचनाएं रहस्यात्मक कविताएँ हैं। इन में कवि ने उस अगोचर सत्ता के प्रति अपनी जिज्ञासा एवं कुतूहल की भावनाओं की अभिव्यक्ति की है, जिसकी प्रेरणा से ग्रह-नक्षत्र, पृथ्वी आदि गतिशील हैं तथा जो समस्त विश्व को व्यथा से व्याकुल किए हुए हैं।

इसी प्रकार कहीं-कहीं निराला की अद्वैतवादी विचारधारा का प्रस्फुटन भी इन कविताओं में हुआ है। जैसे 'प्रेयसी' कविता में कवि ने बतलाया है कि मूलतः आत्मा ब्रह्मस्वरूप है लेकिन माया के पाश में आबद्ध होकर वह कलुषित हो जाती है—

> बीता कुछ काल,
> देह-ज्वाला बढ़ने लगी,
> नन्दन-निकुंज की रति को ज्यों मिला मरु,
> उतर कर पर्वत से निर्झरी भूमि पर
> पंकिल हुई, सलिल देह कलुषित हुआ।[2]

सामाजिक कविताएँ

'सेवा-प्रारम्भ', 'तोड़ती पत्थर' और 'वे किसान की नई बहू की आंखें' अनामिका की सामाजिक कविताएँ हैं। इनमें कवि ने समाज के यथार्थ चित्र अंकित किए हैं। 'सेवा प्रारम्भ' में स्वामी अखण्डानन्द जी और विवेकानन्द जी द्वारा की

१. डॉ० रामरतन भटनागर, कवि निराला, पृ० १६१
२. अनामिका, पृ० ६-७

गई समाज सेवा का चित्रण है। 'तोड़ती-पत्थर' में कवि ने ग्रीष्म के प्रखर आतप-काल में पत्थर तोड़ती हुई मजदूरनी का करुणोत्पादक चित्र अंकित किया है—

वह तोड़ती पत्थर;
कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रकार—
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्रकार।[1]

इसी प्रकार 'वे किसान की नई वहू की आँख' में कवि ने किसान की नई वहू की आँखों के मिस ग्रामीण समाज की विपन्नता एवं दयनीय स्थिति का चित्रण किया है।

'दान', 'मित्र के प्रति' और 'वनवेला' में सामाजिक व्यंग्य मुखर है। 'दान' कविता मे कवि ने उन धार्मिकों पर व्यंग्य किया है जो धर्म का ढोंग रचते हैं, धर्म के नाम पर बन्दरों को पुए खिलाते हैं, किन्तु भूखे मानव के प्रति उनकी करुणा तनिक भी उद्वेलित नहीं होती—

मेरे पड़ौस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन;
झोली से पुए निकाल लिये,
वढ़ते कपियों के हाथ दिये;
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर;
चिल्लाया किया दूर मानव,
बोला मैं—'धन्य, श्रेष्ठ मानव।[2]

'मित्र के प्रति' कविता में प्राचीनता के पोषक व्यक्तियों पर व्यंग्य है। 'वनवेला' में कवि ने लक्षपतियों एवं साम्यवादी नेताओं पर प्रहार किया है।

साँस्कृतिक कविताएँ

'अनामिका' का कवि भारतीय संस्कृति का पुजारी है। अनामिकागत 'खण्डहर के प्रति', 'दिल्ली', 'सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति' आदि रचनाओं में भारतीय संस्कृति का सामगान है। 'खण्डहर के प्रति' कविता में कवि ने हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण की प्रेरणा दी है। भारतीय संस्कृति के प्रतीक के रूप में 'खण्डहर' मानो हमें विस्मृति की नींद से जगा रहा है। 'दिल्ली' में कवि ने दिल्ली को

१. अनामिका, पृ० ७९
२. वही, पृ० २५

मुख्य घटनाएँ वर्णित है। कविता का केन्द्र-विन्दु दुःख एवं विषाद ही रहा—

दुःख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।[1]

'सरोज-स्मृति' में निराला का पुत्री के प्रति प्रगाढ़ प्रेम व्यक्त हुआ है। निराला ने सरोज के लिए तनये, गीते मेरी, जीवित कविते, परी चपल, पुतली, तन्वि, कनक, विमल प्रेम, गिरिजे, शकुन्तले आदि शब्दों का प्रयोग किया है। मेरे विचार से हिन्दी में निराला ही एकमात्र कवि हैं जिन्होंने अपनी पुत्री के रूप का ऐसा शृंगारपरक चित्र प्रस्तुत किया है। कविता में ऐसी अनासक्ति भला और कहाँ मिलेगी ? सरोज के यौवनागमन की एक झाँकी इन पंक्तियों में देखिये—

धीरे-धीरे फिर बढ़ा चरण,
बाल्ये की केलियों का प्रांगण
कर पार, कुंज-तारुण्य सुघर
आई लावण्य-भार थर-थर
कांपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकोश नव वीणा पर;
नेश स्वप्न ज्यों तू मन्द-मन्द
फूटी ऊषा जागरण छन्द।[2]

इस रचना में स्नेहशील एवं कोमलहृदय पिता का रूप तो सामने आता ही है, साथ ही निराला का विद्रोही व्यक्तित्व भी प्रस्फुटित हुआ है। विषम अर्थाभाव की स्थिति में उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह कान्यकुब्जियों की जातिगत परम्पराओं के विरुद्ध किया। जो हो, वात्सल्य, शृंगार, हास्य एवं व्यंग्य के अनेक प्रसंगों को अपने में समाहित किये हुए यह रचना अद्वितीय है।

राम की शक्ति पूजा

यह पौराणिक कथानक पर आधारित एक आख्यानक प्रगीत है। राम द्वारा देवी की उपासना का प्रसंग देवी भागवत, कालिका पुराण तथा कृत्तिवास रामायण में मिलता है। शिव महिम्न स्तोत्र में भी विष्णु द्वारा शिव की पूजा का उल्लेख हुआ है। 'राम की शक्ति पूजा' का मूल आधार वस्तुतः कृत्तिवास रामायण ही है। पौराणिक कथानक को अपनी कल्पना एवं कला-कुशलता द्वारा पल्लवित कर निराला ने उसे एक नवीन रूप प्रदान किया है।

'राम की शक्ति-पूजा' का कथानक संक्षेप में इस प्रकार है। पराजय से खिन्न विषण्णानन राम सेना सहित पर्वत शिखर पर बैठे हैं। संशय से वे बार-बार

१. अनामिका, पृ० १३४
२. अनामिका, पृ० १२६

अस्थिर हो उठते हैं। सहसा उन्हें विदेह के उपवन में सीता से मिलन का स्मरण हो जाता है, उनमें उत्साह का संचार होता है और हर धनुष को भंग करने वाली वाहुओं में बल आ आता है; लेकिन दूसरे ही क्षण उन्हें देवी की उस मूर्ति का स्मरण आ जाता है जो रणक्षेत्र में राम के शरों से रावण की रक्षा कर रही थी। उसी समय रावण का भयंकर अट्टहास सुनकर उनके नेत्रों से दो मुक्ताश्रु गिर पड़ते हैं। राम को विचलित हुआ देखकर हनुमान आकाश को ग्रसने के लिए आतुर हो उठते हैं, लेकिन अंजना रूप में अवतीर्ण होकर शक्ति उन्हें रोकती है। विभीषण राम को हतोत्साह देखकर अनेक उत्साहवर्धक शब्द कहते हैं और शक्ति की मौलिक कल्पना करने की सलाह देते हैं। हनुमान राम की आज्ञा पाकर शक्ति-साधना के लिए एक सौ आठ कमल ले आते हैं। राम जप प्रारम्भ करते हैं। जैसे ही जप पूर्ण होने को होता है साक्षात् दुर्गा आकर कमल उठाकर ले जाती है। कमल न पाकर राम का स्थिर मन विचलित होने लगता है। उसी समय राम की स्मृति सजग हो उठती है कि माता मुझे 'राजीवनयन' कहा करती थी। अतः अभी तो दो नीलकमल शेष हैं। यह सोचकर वे ब्रह्मशर लेकर जैसे ही दक्षिण नेत्र वेधने का उपक्रम करते हैं कि अनेक साधुवाद देती हुई देवी दुर्गा उनका हाथ रोक लेती है।

इस प्रकार 'राम की शक्ति-पूजा' में प्रारम्भ से नाटकीयता है। 'राम की शक्ति-पूजा' जैसी नाटकीयता निराला की और किसी कविता में नहीं है। इसका कारण यह है कि उन्होंने जीवन की अनुभूति-निराशा और पराजय को नाटकीय रूप दिया है।[1] राम को सामान्य मानव के रूप में चित्रित करके कवि ने उनके मानसिक संघर्ष का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

राम और रावण का युद्ध निरन्तर हमारे अन्तस् में होता रहा है। राम सात्विक प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं और रावण तामसिक प्रवृत्तियों का प्रतीक है। राम पर रावण की विजय वताकर कवि ने सात्विक प्रवृत्तियों की तामसिक प्रवृत्तियों पर विजय वताते है। 'राम की शक्ति-पूजा में कवि का आशवादी जीवन-दर्शन स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त' 'राम की शक्ति-पूजा' धार्मिक समन्वयवाद का ज्वलंत उदाहरण है। इसके द्वारा कवि अपने पाठक को एक ही साथ शक्ति, शिव और राम (विष्णु) के पास इस प्रकार से पहुँचता है कि उसकी आस्था में अभेददृष्टि उत्पन्न हुए विना नहीं रहती।

इन रचनाओं के अतिरिक्त 'अनामिका' की कतिपय कविताएँ विवेकानन्द एवं रविन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं का अनुवाद मात्र है। 'गाता हूं गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को', 'नाचे उस पर श्यामा', 'सखा के प्रति' क्रमशः विवेकानन्दजी की 'गाइ गीत सुनाते तोनाय, नाचुक ताहाते श्यामा','सखार के प्रति' का अनुवाद है।

१. डॉ० रामविलास शर्मा, निराला, पृ० १४०

'कहां है देश', 'ज्येष्ठे, 'तट पर' आदि कविताएं रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'निरुद्देश यात्रा' 'वैशाख' 'विजयिनी' कविताओं का अनुदित स्वरूप है।

गीतिका

यह संग्रह सन् १९३६ में प्रकाशित हुआ। इसकी रचनाएँ गीत-काव्य के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग हैं। 'गीतीका' से गीता की शैलीगत मौलिकता का परिचय निराला की ही इन पंक्तियों में प्राप्त हो सकता है। 'प्राचीन कवियों की शब्दावली, संगीत की संगति की रक्षा के लिए, किसी तरह जोड़ दी जाती थी; इसलिए, उसमें काव्य का एकान्त अभाव रहता था। आज तक उनका यह दोप प्रदर्शित होता है। मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है। ह्रस्व-दीर्घ की घट-बढ़ के कारण पूर्ववर्ती गवैये-शब्दकारों पर जो लांछन लगता है, उससे भी बचने का प्रयत्न किया है। दो एक स्थलों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीत के छन्द-शास्त्र की अनुवर्तिता की है। भाव प्राचीन होने पर भी प्रकाशन का नवीन ढंग लिये हुए हैं।...जो संगीत कोमल, मधुर और उच्च भाव तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है।'[1] 'गीतिका' के गीतों में संगीत तथा काव्य का अपूर्व समन्वय मिलता है। इसका कारण यह है कि निराला स्वयं कुशल संगीतज्ञ थे। निराला के इन गीतों पर पाश्चात्य-संगीत का प्रभाव पड़ा है, जो बंगला के माध्यम से उन्हें प्राप्त हुआ। पाश्चात्य संगीत का प्रभाव बंगाल में विशेष रूप से पड़ा था, जिसे निराला ने, अपने जीवन का अधिकांश वहां व्यतीत करने के कारण, संस्कार रूप में ग्रहण किया था।

'गीतिका' के गीतों के विषयों का स्थूल विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं—(१) प्रेम और नारी-सौन्दर्य, (२) प्रकृति-चित्रण, (३) देशप्रेम और राष्ट्रीयता, (४) रहस्यात्मकता।

प्रेम और नारी सौन्दर्य

'गीतिका' में इस प्रकार के गीतों का प्रामुख्य है। इन गीतों में श्रृंगार का संयमित तथा मर्यादित चित्रण है। 'प्रिय यामिनी जागी' में प्रायः जाग्रत नायिका का सौन्दर्य चित्रित है। उसके नेत्र अलसाये हुए हैं, मुख रक्तिम है, खुले हुए केश पृष्ठ, ग्रीवा, बाहु और उर पर छा रहे हैं, घनमेचक केशों के मध्य उसका पूतिमय मुख दिनकरवत् प्रतीत हो रहा है। यहाँ मानवीय क्रियाओं का प्रकृति पर आरोप इस प्रकार मिलता है—

'(प्रिय) यामिनी जागी,
अलस पंकज-दृग अरुण-मुख—
तरुण-अनुरागी।'[2]

१. गीतिका—भूमिका, पृ० १०
२. गीतिका—'प्रिय यामिनी जागी', पृ० ४

'सोचती अपलक आप खड़ी' में विरहिणी का चित्र अंकित है। 'नयनों में हेर प्रिय' में नायिका के दृढ पातिव्रत का विवरण है। 'दृगों की कलियां नवल खुली' में नेत्र-सौन्दर्य चित्रित है। ये नेत्र-कुड्मल रूप-सुधा का पान कर प्रफुल्लित हो उठते हैं, प्रणय-पवन से अधिक चपल एवं हर्षित हो उठते हैं। 'बादल में आये जीवन-धन' में वारिद नायिका के हृदय में प्रेमोद्दीपन कर रहे हैं। 'लिखती सब कहते' में पत्रलेखन का भाव व्यंजित है। 'तुम छोड़ गये द्वारे' में विरहिणी के भावों का चित्रण है। प्रिय के विरह में यह सारा संसार शून्य हो गया है, जीवन में सर्वत्र अंधकार ही अंधकार दृष्टिगत होता है। वह सोचती है क्या मुझे फिर से संयोग-सुख प्राप्त होगा ? 'आयेगा फिर क्या वह प्राप्त, भरकर वह प्यार'। 'स्पर्श से लाज लगी' में नायक के स्पर्श से उत्पन्न नायिका की लज्जा और चेष्टाओं का वर्णन हुआ है—

चुम्बन-चकित चतुर्दिक चंचल
हेर, फेर मुख, कर वहु सुख छल,
कभी हास, फिर त्रास, सांस-वल
उर-सरिता उमगी।[1]

इसी प्रकार 'कव से मैं पथ देख रही, प्रिय' में प्रतीक्षारत नायिका के उद्गार चित्रित हैं। 'स्नेह सरिता के तीर' में तृष्णाकुल-प्रिय को स्नेह-सलिल पिलाने के लिए जाती हुई नायिका का चित्रण है। 'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली' तथा 'मार दी तुझे पिचकारी' में लोक गीतों के से भाव व्यंजित हैं। 'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली' में नायक-नायिका की रति क्रीड़ाओं का होली से रूपक बांधा है। 'वे गये असह दुख में भर' में विरहिणी की स्थिति का अनेक प्राकृतिक उपमानों से साम्य प्रदर्शित किया किया है।

शृंगार के इन गीतों में कवि ने प्रकृति को मानवीय भावनाओं और क्रिया-कलापों की अभिव्यक्ति का साधन बनाया है। निराला के भावों पर सदैव बुद्धि का अंकुश रहा है। अस्तु, इन गीतों में वासनात्मक उच्छृंखलता नहीं आ पाई है। इन गीतों के 'भाव-विस्तार में इतना गहन गुम्फन और इतनी जटिल संकुलता है कि निराला प्रेम तथा सौन्दर्य के उस रूप के कवि नहीं बन पाये जिस रूप में गालिब और रवीन्द्रनाथ हैं।'[2]

प्रकृति-चित्रण

'गीतिका' का दूसरा स्वर प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी कविताओं का है। 'सखि वसन्त आया' में वसन्तागम से उल्लसित प्रकृति का चित्रण है। किसलय-वसना लतिका उल्लसित होकर प्रिय तरु का आलिंगन कर रही हैं, मधुपवृन्द गुंजार कर

---

१. गीतिका, पृ० ३३
२. आधुनिक कविता का मूल्यांकन—इन्द्रनाथ मदान, पृ० २७७

रहा है, पिक अपनी तान छेड़ रही है, मन्द-मन्द सुगन्धित पवन चल रहा है, सरसिज खिल उठे हैं, पृथ्वी हरीतिमा से आच्छन्न हो गई है। 'वह चली अब अलि, शिशिर-समीर' में शिशिरकालीन वातावरण चित्रित है। 'सखी री यह डाल वसन वासंती लेगी' में कवि ने पूरा रूपक पार्वती के तप पर घटित किया है। यहां सखी डाल का वसंत-तप, पार्वती का शंकर तप है। समीर की माला है, वरेण्य वसंत है और फल-प्राप्ति पुष्पदल है।'[1] 'अपने सुख-स्वप्न से खिली' में वृन्त की कली का मानवीकरण किया गया है। 'रंग गई पग-पग धन्य धरा' और 'रही आज मन में' इन दोनों कविताओं में वन-श्री चित्रित हुई है। 'गई निशा वह, हंसी दिशाएं' में प्रातःकाल का सजीव चित्र प्रस्तुत हुआ है। 'डूबा रवि अस्ताचल', 'अस्ताचल रवि जल छलछल-छवि' तथा 'देकर अन्तिम कर रवि गये पार' में सूर्यास्तकालीन प्राकृतिक शोभा का मनोरम दृश्य सामने आ जाता है।

देशप्रेम तथा राष्ट्रीयता

निराला के देश प्रेम का स्वर उनकी अनेक कविताओं में मुखरित हुआ है। 'गीतिका' के प्रथम गीत में ही कवि वीणावादिनी से देश के मंगल की प्रर्थना करता हुआ कहता है—

वर दे, वीणावादिनी वरदे।
प्रिय स्वतन्त्रता-रव अमृत-मन्त्र नव
भारत में भर दे।
काट अन्ध-उर के बन्धन-स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे।[2]

'जागो जीवन धनिके' में कवि माँ भारती से देश को आर्थिक दृष्टि से संपन्न बनाने की प्रार्थना करता है। 'नर जीवन के स्वार्थ सकल' में कवि देश के कल्याण के लिए माँ से प्रार्थना करता है कि जीर्ण-शीर्ण प्राचीनता को दूर देश को नवीनता के प्रकाश से प्रकाशित करे, देश में नररत्न उत्पन्न कर शक्ति का संचार करे—

जला दे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन;
क्या करूंगा तन जीवन हीन?
मां, तू भारत की पृथ्वी पर
उतर रूपमय माया तन धर
देवव्रत नरवर पैदा कर,
फैला शक्ति नवीन।[3]

---

१. निराला : काव्य और व्यक्तित्व—धनंजय वर्मा, पृ० १२२
२. गीतिका, पृ० ३
३. गीतिका, पृ० ३६

'भारति, जय, विजयकेर' में भारत-गौरव वर्णित है। भारत के पदतल में लंका है, गर्जन करता हुआ सागर इसका स्तवन कर अपने बल से चरण युगल का प्रक्षालन कर रहा है, गंगा की धवल धार इसका हार है, हिमालय इसका मुकुट है। 'वन्दूँ पद सुन्दर तव' में भी जन्मभूमि की ही वन्दना है।

'बुझे तृष्णाशा-विपानल झरे भाषा अमृत निर्झर' में निराला का मानवतावाद प्रकट हुआ है। यहाँ कवि यह अभिलाषा व्यक्त करता है कि मनुष्यों की तृष्णाशा विपानल बुझ जाय, सब प्राणी परस्पर प्रेमपूर्वक रहें, मिष्ट-भाषी हों, सहृदय हों। धरा से शोषण-जन्य दुख दूर हो जाये।

रहस्यात्मकता

निराला के गीतों में परोक्ष सत्ता की रहस्यात्मक अनुभूतियों का चित्रण भी मिलता है। उनके इस प्रकार के गीतों में अलौकिक की अभिव्यक्ति लौकिक का आधार लेकर हुई है। 'निराला जी के काव्य का मेरुदण्ड ही रहस्यवाद है। उनके अधिकांश पदों में मानवीय जीवन के ही चित्रण हैं; किन्तु वे सब के सब रहस्यानुभूति से अनुरंजित हैं।'[1]

'गीतिका' के 'कौन तम के पार', 'जग का देखा एक तार', 'पास ही रे हीरे की खान' 'मैं न रहूँगी जब सूना होगा जग', 'प्यार करती हूँ अलि' इसलिये मुझे भी करते हैं वे प्यार', 'तुम्हीं गाती हो गान व्यर्थ में पाता हूं सम्मान', 'कौन तुम शुभ-किरण वसना', वह रूप जाना उर में', 'कब से मैं पथ देख रही प्रिय', 'मौन रही हार', कैसी बजी बीन' 'हुआ प्रात, प्रियतम, तुम जाओगे चले', 'कितनी बार पुकारा', 'देख दिव्य छवि लोचन हारे', 'मेरे प्राणों में आओ', 'रहा तेरा ध्यान' आदि अनेक रहस्यात्मक रचनाएं हैं। इन कविताओं में कवि ने अज्ञात सत्ता के प्रति अपनी जिज्ञासा व्यक्त की है।

इस संग्रह की कतिपय कविताएं भक्ति परक हैं तथा कुछ में कवि के वैयक्तिक अनुभव और मानसिक स्थिति का चित्रण है। 'मुझे स्नेह क्या मिल सकेगा', 'मिला न रे मुझे कभी प्यार', 'रे कुछ न हुआ तो क्या', 'मैं रहूंगा न गृह के भीतर' आदि इसी प्रकार की कविताएँ हैं।

इस प्रकार गीतिका में अनेक स्वरों का समारोह है। इस '१०१ गीतों की अंजलि में मानव मुक्ति साधना है, रहस्यात्मक संकेत है, नारी तथा प्रकृति का रूप-चित्रण है और देश कल्याण के लिए उद्बोधन है।'[2]

तुलसीदास

यह निराला की प्रौढ़तम कतियों में से एक है। भार्या पर तुलसीदास की आसक्ति, भार्या की प्रेरणा, तुलसीदास का विरक्ति भाव तथा भक्तिभाव—रचना के

१. नन्ददुलारे वाजपेयी, गीतिका की भूमिका, पृ० २५
२. इन्द्रनाथ मदान, आधुनिक कविता का मूल्यांकन, पृ० २७६

ये चार स्तम्भ प्रमुख हैं। लोक प्रचलित कथानक को लेकर इस खण्ड-प्रबन्ध की रचना हुई है। इसमें एक ओर इतिहास के परिपार्श्व में मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का चित्रण हुआ है और दूसरी ओर कवि द्वारा मानसकार के व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। 'तुलसी का प्रथम अध्ययन, पश्चात् पूर्व संस्कारों का उदय, प्रकृति दर्शन और जिज्ञासा, नारी से मोह, मानसिक संघर्ष और अन्त में नारी द्वारा ही विजय आदि वे मनोवैज्ञानिक समस्याएँ हैं जिन्हें लेकर कवि ने कथा को विस्तार दिया है।'[1] इतिहास और मनोविज्ञान के अपूर्व सम्मिश्रण से रचना को उत्कर्ष प्राप्त हो गया है।

प्रारम्भ में कवि ने आलंकारिक रूप में भारतीय संस्कृति के सांध्यकाल का चित्रण किया है। मुगलों ने हिन्दू-शासन को ही नहीं, वरन् हिन्दू सभ्यता और संस्कृति को भी ध्वस्त कर दिया—

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ्मंडल
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान;
है उर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।[2]

धीरे-धीरे पंजाब, कोशल, बिहार आदि सभी प्रान्त मुस्लिम आक्रमण के घनान्धकार से आच्छन्न होते गये। मुगलदल बादलों के समान देश पर घिरता चला गया तथा पठान उन्मद नद के समान देश को जलाप्लावित करते गये। देश के दुर्धर्ष भट और क्षत्रिय महानिद्रा को प्राप्त हो गये थे, नृपों के वेष में केवल सूत और वन्दी-गण शेष थे। मुगलों ने देश की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया था। जातीय जीवन की नदियां एक नवीन संस्कृति के सागर की ओर प्रभावित हो चली थीं।

धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति के अवसानोपरान्त उदित इस्लामी संस्कृति तथा सभ्यता का सूर्य अपनी मादक किरणों से देश को सिक्त करने लगा। आक्रमण के पश्चात् देश में शान्ति का वातावरण तो स्थापित हुआ लेकिन अशक्त होकर समस्त देश विलासिता की धारा में प्रवाहित होने लगा।

ऐसे राजनीतिक विभ्रम के समय यमुनावर्ती नगर राजापुर में सुन्दर, पुष्ट तथा प्रतिभासम्पन्न युवकरत्न अधीतकाव्यशास्त्र तुलसीदास गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर रहे थे। एक दिन वे अपने मित्रों सहित पार्श्ववर्ती चित्रकूट पर गये। वहाँ कालान्तर-शोभा को निहार कर उनका मन एक नवीनालोक से आलोकित हो उठा। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रकृति अस्फुट भाषा में कुछ कह रही है। प्रकृति के संकेत

१. तुलसीदास, परिचय, पृ० १
२. वही, पृ० ११

से उन्हें उस माया का ज्ञान हो जाता है जो सत्य को आवृत किये है। प्रकृति की उस मौन वाणी को सुनकर तुलसीदास का मन विहग आकाश में उड़ता गया, जब वह अपनी उच्चतम अवस्था पर पहुंच गया तो उन्हें भारत की वास्तविक स्थिति प्रत्यक्ष दिखाई दी। उन्होंने देखा कि राहु द्वारा ग्रसित मंदाभ सूर्य के समान भारतीय संस्कृति भी कुसंस्कारों के द्वारा ग्रसित होने के कारण निष्प्रभ हो गई है। विभिन्न संप्रदाय तथा मत परस्पर संघर्षरत हैं। वर्ण-व्यवस्था विश्रृङ्खल हो गई है। क्षात्र धर्म लुप्त हो गया है। क्षत्रिय रक्षा करने में असमर्थ हो गये हैं, द्विज चाटुकार हो गये हैं। केवल शूद्र ही अन्य वर्णों की सेवा में संलग्न हैं, जो मौन होकर अन्य वर्णों द्वारा किये गये प्रहार एवं अत्याचारों को सह रहे हैं।

अब तुलसीदास ने निश्चयपूर्वक यह समझ लिया कि देश के सांस्कृतिक पतन व दासता के अंधकार को दूर किये बिना सत्य के दर्शन नहीं हो सकते। वे इस अज्ञान के आवरण को उठा फेंकने के लिए विकल हो उठते है, किन्तु उसी समय उन्हें आकाश में अपनी प्रेयसी रत्ना के दर्शन होते हैं। वे क्षण भर के लिए उसकी छवि निहारते रह जाते हैं कि वह अदृश्य हो जाती है और उनका मन धीरे-धीरे नीचे उतर जाता है। अब समस्त प्रकृति उन्हें अपनी प्रिया के रंग में रंजित दिखाई देती है।

इधर रत्नावली का भाई अपनी बहन को भ्रातृगृह ले जाने के लिए आता है और वह तुलसीदास की अनुपस्थिति में ही उसे लिवा ले जाता है। जब घर लौटकर तुलसीदास अपनी स्त्री को नहीं पाते हैं तो वे उसके आकर्षण में बँधे हुए ससुराल की ओर चल देते हैं। मार्ग में उन्हें समस्त प्रकृति अपनी भावनाओं के अनुकूल सौन्दर्यमयी दृष्टिगत होती है। ससुराल में उनका बहुत आतिथ्य होता है, लेकिन भाभी के इस व्यंग्य से कि 'रतन से प्रेम देखा' आहत रत्नावली क्रोध के आवेश में तुलसीदास के पास आती है और उनकी भर्त्सना करती हुई कहती है—

> धिक् ! धाए तुम यों अनाहूत,
> धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत
> राम के नहीं, काम के सूत कहलाये
> हो विके जहाँ तुम विना दाम,
> वह नहीं और, कुछ-हाड़ चाम।
> कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए।[1]

यह सुनते ही तुलसीदास के पूर्व संस्कार जाग उठते हैं। उनका काम भस्मीभूत हो जाता है। उन्हें अपने सामने स्त्री नहीं अनल प्रतिमा दिखाई देती है। फिर वे उसे नीलवसना शारदा के रूप में देखते हैं जो धीरे-धीरे अदृश्य हो जाती है। जिस कली में कवि का हृदय बद्ध था वह भारती वनकर छंद की सुरभि लिए उसी के भीतर

---

१. तुलसीदास, पृ० ५३

खुल गई—

"जिस कलिका में कवि रहा बन्द
वह आज उसी में खुली मन्द,
भारती-रूप में सुरभि-छन्द निष्प्रश्रय।"[1]

जब कवि को अपनी सुधि आयी तो उसने चलने का विचार किया। लेकिन सामने खड़ी थी पत्नी, सजलनयना। परन्तु वे रुके नहीं, केवल यही कहकर मंदचरण से वाहर आ गये—

"जो दिया मुझे तुमने प्रकाश,
अब रहा नहीं लेशावकाश रहने का
मेरा उससे गृह के भीतर;
देखूंगी नहीं कभी फिर कर,
लेता मैं, जो वर जीवन-भर वहने का।"[2]

इस प्रकार 'तुलसीदास' के कथानक में पर्याप्त नाटकीयता है। कथावस्तु अनेक नाटकीय मोड़ लेती है। यद्यपि इसका कथानक अधिक विस्तृत नहीं है और न घटनाओं की ही बहुलता है, परन्तु अंतर्द्वन्द्व व मानसिक संघर्ष आदि के चित्रण से कथा को पर्याप्त विस्तार मिल गया है। कवि का चिन्तन और दर्शन ही कविता में मुखर हो उठा है। "कवि का क्षेत्र नवीन है। रहस्यवाद का कथा रूप में उसने एक नया चित्र खींचा है। मनोवैज्ञानिक तथ्यों का निरूपण उसका ध्येय है।"[3] निराला से पूर्व किसी अन्य छायावादी कवि ने इस प्रकार की रचना नहीं की। वस्तुतः निराला की इस रचना में छायावादी कला का विकसित एवं प्रौढ़ रूप दृष्टिगत होता है।

कुकुरमुत्ता

यह संग्रह सन् १९४२ में प्रकाशित हुआ। इससे निराला की काव्यधारा के एक महत्वपूर्ण मोड़ की सूचना मिलती है। कुकुरमुत्ता से पूर्व की रचनाओं (परिमल, गीतिका, अनामिका, तुलसीदास आदि) में जो औदात्य, गरिमा एवं सौन्दर्य के प्रति आकर्षण मिलता है, निराला के परवर्ती काव्य (नये पत्ते, अणिमा, वेला आदि) में उसका अभाव है। वस्तुतः इस समय तक निराला सामाजिक एवं आर्थिक संघर्षों से बहुत अधिक व्याहत हो चुके हो थे। समाज ने उनकी आस्थाओं एवं आकांक्षाओं पर जो प्रहार किये थे उनका भी प्रभाव उनके विघटनशील व्यक्तित्व के रूप में स्पष्टतया दिखाई पड़ने लगा था। साथ ही यह समय द्वितीय महायुद्ध तथा बंगाल के अकाल का था, जिसने समाज को बहुत जर्जर कर दिया था। इन सब घटनाओं एवं परिस्थितियों ने समाज के प्रति निराला के दृष्टिकोण को अधिक व्यंग्यात्मक बना

१. तुलसीदास, पृ० ५६
२. वही, पृ० ६०
३. तुलसीदास की भूमिका, पृ० ६-४

दिया। अपने परवर्ती काव्य में मुख्यतः यथार्थवादी एवं व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण ही अपना कर चले हैं।

'कुकुरमुत्ता' निराला के प्रगतिशील, यथार्थवादी, व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण का प्रतिफलन है। 'जुही की कली' को निराला के छायावादी काव्य में जो महत्व प्राप्त हुआ वही 'कुकुरमुत्ता' को उनके प्रगतिशील काव्य में मिला। यह रचना निराला की हास्य-व्यंग्यात्मक रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आचार्य वाजपेयी जी के अनुसार "कुकुरमुत्ता में विनोद की सृष्टि अतिरंजित वर्णनों द्वारा की गई है। यत्र-तत्र यथार्थवादी चित्रण की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है।"[1]

'कुकुरमुत्ता' की कथा संक्षेप में इस प्रकार है। एक नवाब थे। उन्होंने फारस से गुलाव मँगाकर अपने वाग में लगाये। कई माली उस वाग की सेवा में लगे और वाग को गजनवी के वाग के समान वना दिया गया। उसमें वेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी, जुही, नरगिस, रातरानी, कमलिनी, चम्पा, गुलमेंहदी, गुलखैरन, गुलअव्वास, गेंदा, गंधराज आदि अनेक फूलों के पौधे लगाये गये। जहाँ फारस के गुलाव खिले थे, वहीं पास में कुकुरमुत्ता भी अकड़कर खड़ा था। वाग के वाहर नवाव के खादिम के झोंपड़े थे। उनमें एक मालिन, वंगालिन की लड़की गोली रहती थी जो नवावजादी, वहार की हमजोली थी। एक दिन दोनों वाग में घूम रही थीं। वहार तो गुलाबों को देख रही थी, किन्तु गोली की दृष्टि कुकुरमुत्ते पर पड़ी। उसने वहार से कुकुरमुत्ते के कवाव की प्रशंसा की। गोली की माँ ने दोनों को कुकुरमुत्ते का स्वादिष्ट कवाव वनाकर खिलाया। जव वहार ने अपने पिता नवाव से कवाव के विषय में कहा तो उन्होंने माली से कुकुरमुत्ता ले आने को कहा, किन्तु माली ने कहा—हुजूर, कुकुरमुत्ता नहीं रहा, रहे हैं सिर्फ गुलाव। नवाव ने कहा कि हम अन्य फूलों के साथ कुकुरमुत्ता भी चाहते हैं। अतः जहाँ गुलाव थे वहाँ कुकुरमुत्ता भी उगाओ। इस पर माली ने कहा—माफ करें खता, कुकुरमुत्ता उगाया नहीं उगता।

इस प्रकार 'कुकुरमुत्ता' का कथानक वहुत ही साधारण है, किन्तु निराला ने अपनी नई शैली में उसे अमर कर दिया है। यही तो इसकी विशेषता है। इसके वाच्यार्थ से अधिक महत्व इसके व्यंग्यार्थ का है। इसके व्यंग्य वहुमुखी हैं। "लोगों में इस वात पर मतभेद रहा है कि निराला जी इस कविता में किस पर व्यंग्य करना चाहते हैं। इस मतभेद का कारण कविता की अस्पष्टता है जो युद्धकाल में उनके विश्वासों के डिग जाने से पैदा हुई है।"[2] कुकुरमुत्ता का मूलभूत व्यंग्य उस वर्गवादी समाज पर है, जहाँ उच्च वर्ग के आधिपत्य के नीचे निम्नवर्ग उपेक्षित रहता है। कुकुरमुत्ता यहाँ निम्न वर्ग या श्रमिक वर्ग का प्रतीक है और गुलाव पूँजीपति या शोषक वर्ग का। श्रमिकों का खून चूसकर पूँजीपति ऐश्वर्य भोग करते हैं। कुकुरमुत्ता

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, भूमिका, पृ० ३०
२. डॉ० रामविलास शर्मा, निराला, पृ० १८८

गुलाब को सम्बोधित कर यही कहता है—

"अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू रंगोआब,
खून चूसा खाद का, तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपीटलिस्ट
माली कर रखा, सहाया जाड़ा घाम।

× × ×

तूने दुनिया को बिगाड़ा
मैंने गिरते से उभाड़ा।"[1]

कुछ विद्वानों का यह मत भी है कि इसमें निराला ने कुकुरमुत्ता को जनक के रूप में चित्रित कर अद्वैतवाद का भी उपहास किया है।[2]

इस प्रकार निराला का 'कुकुरमुत्ता' अपनी साहित्यिक वेशभूषा में यथार्थवादी दृष्टिकोण और प्रखर व्यंगों से सजा हुआ है। ऐसी तुच्छ वस्तु निराला की वाणी में जो महत्व पा गई है, उसे युग-प्रेरणा से पृथक् नहीं किया जा सकता।

अणिमा

यह संग्रह सन् १९४३ में प्रकाशित हुआ। इस समय तक निराला जी निरन्तर दुःख एवं कष्ट सहते-सहते निराश हो चुके थे। जीवन में उन्हें सर्वत्र अंधकार ही अंधकार दृष्टिगोचर हो रहा था। परिमल का 'अभी न होगा मेरा अन्त' कहने वाला कवि अब अपने मरण की भी कल्पना करने लगा था। विपत्ति में ईश्वर ही एकमात्र आश्रय दीख पड़ता है। अस्तु, अणिमा के अधिकांश गीतों में वैयक्तिक निराशा और अवसाद का चित्रण तथा परम-सत्ता के प्रति भाव-निवेदन है। वास्तव में 'अणिमा' संधि-काव्य है। छायावाद और प्रगतिवाद के दुराहे पर खड़ा कवि अपने सारे साहित्यिक जीवन का लेखा-जोखा देकर नये मैदान में उतर रहा है। अनेक कविताओं में भाषा-शैली-छन्द में पुरानापन है, परन्तु कुछ कविताओं में कवि नये क्षेत्र में आ गया है।[3]

'गीतिका' की आध्यात्मिक तथा भक्तिपरक कविताओं का स्वर 'अणिमा' में भी सुना जा सकता है। इसमें भक्तिपरक कविताओं का प्राधान्य है। भक्ति की यह धारा आगे चलकर 'अर्चना', 'आराधना' तथा 'गीतगुंज, में प्रवाहित हुई है। 'जन-जन जीवन के सुन्दर', 'उन चरणों में', 'दलित जन पर करो करुणा', 'भाव जो छलके पदों पर, 'धूलि में तुम मुझे भर दो', 'मैं बैठा था पथ पर', 'तुम्हीं हो शक्ति' आदि गीत इसी श्रेणी के हैं। इनमें निराला का मानवतावाद छलकता दीखता है। प्रभु से दलित जनों पर करुणा करने की प्रार्थना करता हुआ कवि कहता है—

१. कुकुरमुत्ता
२. देखिये, इन्द्रनाथ मदान, आधुनिक कविता का मूल्यांकन, पृ० २८४
३. देखिये, डा० रामरतन भटनागर, कवि निराला, पृ० २२?

दलित जन पर करो करुणा।
दीनता पर उतर आये
प्रभु तुम्हारी भक्ति अरुणा।
देख वैभव न हो नत-सिर।
समुद्धत-मन सदा हो स्थिर,
पार कर जीवन निरन्तर,
रहे बहती भक्ति-वरुणा।[1]

इसी प्रकार 'धूलि में तुम मुझे भर दो' कविता में कवि प्रार्थना करता है—

धूलि में तुम मुझे भर दो
धूलि-धूसर हुए जो हुए पर
उन्हीं के वर वरण करदो।
दूर हो अभिमान, संशय,
वर्ण-आवभगत महाभय,
जाति जीवन हो निरामय
वह सदाशयता प्रखर हो।[2]

'तुम आये' तथा 'तुम चले ही गये प्रियतम' में बड़े भावपूर्ण रहस्यात्मक संकेत हैं। 'स्नेह निर्झर वह गया', और 'मैं अकेला' में कवि का वैयक्तिक अवसाद चित्रित है। 'स्नेह निर्झर वह गया' में उसने अपने नीरस एवं स्नेहशून्य जीवन के चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'मैं अकेला' में कवि का नैराश्य इतना बढ़ गया है कि उसे अपनी मृत्यु निकट आती प्रतीत होती है—

मैं, अकेला
देखता हूं, आरही
मेरे दिवस की सान्ध्य वेला।
पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती आरही,
हट रहा मेला।[3]

'उद्‌बोधन' तथा 'सहस्राब्दी' सांस्कृतिक कविताएं हैं। 'उद्‌बोधन' में कवि ने अतीत के अनुकरण पर निर्मित एक नवीन समाज तथा संस्कृति की कल्पना की है। 'सहस्राब्दी' में विक्रमादित्य के रोहण के पश्चात् की भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास चित्रित किया गया है। भारत के अतीत-गौरव के चित्रण के साथ-साथ

१. अणिमा—दलित जन पर करो करुणा।
२. वही—धूलि में मुझे भर दो।
३. अणिमा, मैं अकेला (१९४०), पृ० २९

सभ्यता और संस्कृति के कर्णधारों के प्रति भी कवि ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।

इस संग्रह में साहित्यिक मनीषियों, राजनीतिक नेताओं और धार्मिक महात्माओं के प्रति लिखी गई अनेक प्रशस्तियाँ भी संकलित हैं। 'श्रद्धांजलि' में आचार्य शुक्लजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की गई है तथा उनकी दिनंदिन विवर्धमान प्रतिमा कला का आलंकारिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। 'आदरणीय प्रसाद जी के प्रति' कविता में निराला ने कवि प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्यिक जीवन के विकास को पट्-ऋतुओं के रूप में वर्णित किया है। प्रसाद कालीन अनेक साहित्यकारों का उल्लेख भी इस कविता में हुआ है। 'श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति' में हिन्दी के विशाल मंदिर की वीणावाणी महादेवी की प्रशस्ति है। इसमें नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत, यामा, दीपशिखा, अतीत के चलचित्र, शृंखला की कड़ियाँ आदि के उल्लेखों में बड़ी भावपूर्ण प्रशस्ति है और समस्त रचना-संग्रहों का बड़े आलंकारिक ढंग से वर्णन हुआ है 'सन्त कवि रैदास के प्रति रचना में कवि ने ज्ञान-गंगा में अविरत बहने वाले समुज्जवल चर्मकार के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है—

हुआ पारस भी नहीं तुमने, रहे
कर्म के अभ्यास में, अविरत बहे
ज्ञान गंगा में, समुज्जवल चर्मकार,
चरण छूकर कर रहा मैं नमस्कार।[1]

'महात्मा बुद्ध के प्रति' में कवि ने महात्मा बुद्ध की प्रशस्ति करते हुए प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति के प्रति अपनी निष्ठा प्रकर की है। आधुनिक सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास से विश्व जिस विनाश की ओर अग्रेसर हो रहा है, अनेक सुख-साधनों की खोज के साथ मनुष्यों में जिस स्वार्थ-भावना की वृद्धि हो रही है तथा अनेक राष्ट्र जिस संघर्ष की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं, उसके यथार्थ चित्र बड़े मार्मिक हैं। एक उद्धरण में इनको देखिये—

'आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
स्पष्ट दिख रहा, सुख के लिए खिलौने जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन; केवल पैसे
आज लक्ष्य में है मानव के; स्थल-जल-अम्बर
रेल-तार बिजली-जहाज नभयानों से भर
दर्प कर रहे मानव, वर्ग से वर्ग गरा
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विलक्षण।[2]

---

१. अणिमा, संत कवि रैदास के प्रति
२. निराला, अणिमा, भगवान बुद्ध के प्रति (१९४०), पृ० ३३

'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज' कविता एक आख्यानक गीत है। कवि ने एक आख्यान का आश्रय लेकर स्वामी परमानन्द जी और उनके आश्रम द्वारा की गई समाज सेवाओं का वर्णन किया है। उसने रामकृष्ण आश्रम के संन्यासियों के प्रति भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।

इनके अतिरिक्त दो प्रशस्तियाँ श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के प्रति हैं। एक प्रशस्ति संस्कृतनिष्ठ हिन्दी में है और दूसरी बंगला में।

इस संग्रह से 'यह है बाजार', 'सड़क के किनारे दुकान', 'जलशय के किनारे कुहरी' आदि कुछ यथार्थवादी कविताएँ भी हैं। इनमें प्रकृति, समाज तथा मानवीय-क्रियाकलापों का यथातथ्य चित्र अंकित है। एक चित्र देखिए—

'सड़क के किनारे दुकान है
पान की, दूर इक्कावान है,
घोड़े की पीठ ठोंकता हुआ,
पीरबख्श, एक बच्चे को दुआ
दे रहा है, पीपल की डाल पर
कूक रही है कोयल, माल पर
बैलगाड़ी चली ही जा रही है,
नीम फली है, खुशबू आ रही है।'[1]

इन कविताओं में निराला का प्रगतिवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। इनमें यथार्थ चित्रण के साथ कहीं-कहीं व्यंग्य भी समाविष्ट हो गया है। जैसे 'चूंकि यहाँ दाना है' में आज के समाज पर अच्छा व्यंग्य किया गया है। यहाँ सामाजिक रीति-नीति तथा मानव की सभ्यता के चित्र प्रस्तुत करते समय कवि का ध्यान रंग भेद और जाति पांति के कठोर पाश से छुटकारा पाने की ओर भी गया है। भाषा स्वच्छ, सरल और गतिशील है। संस्कृत में बोलचाल के शब्दों का (उर्दू शब्दों तक का) प्रयोग किया गया है, इतना ही नहीं इस संग्रह की अन्तिम कुछ कविताओं में उर्दू के ढंग पर गद्य-सा लिखा गया है। डॉ० बच्चनसिंह का कथन है कि 'अणिमा में शैलीगत प्रौढ़ता तो अवश्य है किन्तु पिछला प्रवाह नहीं।' प्रेमानन्द एक कथावाचक की कथा हो गई है, उसमें काव्यत्व नहीं है...सहानुभूति दिखलाने के ही उद्देश्य से इसकी रचना हुई है। जहाँ उन्होंने तटस्थ होकर वर्णन किया है वहाँ काव्यत्व का उन्मेष है[2] अणिमा में प्रायः तीन प्रकार की रचनाएँ हैं—भक्ति प्रधान, विषाद-मूलक तथा प्रशस्त या वृत्तपरक। शिल्प की दृष्टि से कोई प्रौढ़ता इस संग्रह की कविताओं में नहीं दीखती है। सभी कविताएँ प्रायः सामान्य स्तर की हैं।

---

१. अणिमा, सड़क के किनारे दुकान।
२. क्रान्तिकारी कवि निराला—'अणिमा' के गीत और विषाद की छाया, पृ० १६२

वेला

यह गीत-संग्रह सन् १९४६ में प्रकाशित हुआ। गीतों के अतिरिक्त इसमें उर्दू-फारसी की बहरों के वजन पर लिखी गई गजल-शैली की कविताएँ भी संग्रहीत हैं। स्वयं कवि के शब्दों में इस संग्रह का परिचय इस प्रकार मिलता है—"बेला मेरे नये गीतों का संग्रह है। इसमें प्रायः सभी तरह के गेय गीत हैं। भाषा सरल और मुहावरेदार है। गद्य करने की आवश्यकता नहीं है। देशभक्ति के गीत भी हैं। बढ़कर नई बात यह है कि अलग-अलग बहरों की गजलें भी हैं, जिनमें फ़ारसी के छन्दशास्त्र का निर्वाह किया गया है।"[1] इन गजलों में निराला ने भाषागत अनेक प्रयोग किये हैं। कहीं उर्दू और हिन्दी मिश्रित भाषा है, कहीं अभ्यासवश उर्दू के साथ-साथ संस्कृत पदावली भी आगई है जो बहुत ही बेतुकी प्रतीत होती है—

> वहीं नवीन सजी और
> वहीं बजी वीणा
> शरबो प्याले का अब तक
> न बहिष्कार हुआ।[2]

किन्तु, जहाँ 'खालिस उर्दू' का प्रयोग हुआ है वहाँ कविता के स्वाभाविक सौन्दर्य की अभिवृद्धि ही हुई है।

विषय की दृष्टि से भी 'वेला' की कविताओं में वैविध्य है। इसमें आध्यात्मिक, शृंगारिक, प्राकृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, देशप्रेम आदि विषयों से सम्बन्धित कविताएँ ही मुख्य रूप से मिलती हैं। इस संग्रह की रहस्यात्मक कविताएँ गीतिका की परम्परा की हैं, परन्तु कई कविताओं में दुरूहता एवं अस्पष्टता आगई है।

फिर भी इस संग्रह में प्रकृति-सम्बन्धी गीतों की प्रधानता है। 'शुभ्र आनंद,' 'हंसी के तार,' 'छाये आकाश में', 'लू के झोंकों,' 'खुल गया दिन' 'राणे दिनकर', 'कैसी हवा' आदि कविताओं में प्रकृति का आलंबन-रूप बड़ा स्पष्ट और उज्ज्वल बन पड़ा है।

निराला ने समाज से संपृक्त रहकर ही काव्य-रचना की है। उनका कवि समाज की अवहेलना नहीं कर पाया है। यही कारण है कि उनकी कविताएँ समाज के विविध पहलुओं के चित्रण से ओतप्रोत मिलती हैं। 'वेला' की 'भीख मांगता' कविता में एक भिखारी को देखकर विभिन्न वर्ग के लोगों में जो भावनाएं उद्बुद्ध होती हैं कवि ने उनका बड़ा सजीव चित्रण ही नहीं किया वरन् समाज की हीन मनोवृत्ति पर एक सांकेतिक प्रहार भी किया है। इसी प्रकार 'आ रे, गंगा के किनारे' कविता में कवि ने उन ढोंगी, पाखण्डी साधुओं पर व्यंग्य किया है जो गंगा तट पर पाखण्ड के सहारे धर्म के नाम पर अर्थसिद्धि करते हैं।

---

१. बेला—आवेदन
२. बेला—पृ० २९

निराला आर्थिक समता के पक्षपाती थे। वे चाहते थे कि कतिपय पूँजीपतियों के हाथों में ही अर्थ का एकीकरण न हो। वरन् पूँजी का वितरण समान रूप से होना चाहिए। इसी कारण 'बेला' की कुछ कविताओं में उन्होंने पूँजीवादियों पर व्यंग्य किये हैं। एक गीत में वे कहते हैं—

देश को मिल जाय जो
पूँजी तुम्हारी मिल में हैं।
हार होंगे हृदय के
खलकर सभी गाने गये।[1]

'बेला' की कतिपय कविताओं पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव भी स्पष्ट है। मार्क्सवादियों के समान वे भी क्रांति के पक्षपाती थे। 'बेला' की 'जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ' कविता में क्रांति के लिए प्रोत्साहन देखिये—

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ
यहां जहां सेठ जी बैठते थे
बनिए की आंख दिखाते हुये
उनके ऐंठाये ऐंठे थे
धोके पर धोका खाते हुए
बैंक किसानों का खुलवाओ।[2]

इसके अतिरिक्त 'बेला' में कुछ ऐसे शृंगारिक गीत भी संकलित हैं जिनमें महफिलों और मुशायरों में होने वाली शेरोशायरी की-सी रंगीनियत मिलती है। कुछ गीतों में अलौकिक प्रेम की व्यंजना भी हुई है। इनमें सूफियाना प्रेम का पुट दृष्टिगत होता है।

भाव की दृष्टि से कतिपय कविताएँ नितान्त अस्पष्ट हैं। बेला की चौवीसवीं कविता इसका प्रमाण है—

अपने को दूसरा न देख,
दूसरे को अपना न कह।
सपने को कल्पना न मान,
कल्पना को सपना न कह।
आंख की आनके लिए
आन की आंख से गुजर,
तपने को बैठना सही,
बैठने को तपना न कह।
जैसे हुबाब गांठ बांध,
जैसे गुलाब गांठ खोल

१. बेला, पृ० ६७
२. बेला, कविता संख्या ६२

आंख के लगने से सुघर
आंख का तू अपना न कह ।[1]

इसी प्रकार की अस्पष्टता 'बाहर मैं कर दिया गया हूं' कविता में मिलती है।

इस प्रकार 'बेला' की कविताओं में भाव-वैविध्य है अपितु भाव-गांभीर्य का नितान्त अभाव है। कहीं कहीं भावों में अस्पष्टता भी आ गई है। कलात्मकता की दृष्टि से इन कविताओं में उत्कर्ष नहीं है। अस्तु इस संग्रह को हम भाषा, भाव एवं शैली के क्षेत्र में एक नवीन प्रयोग कह सकते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि बेला-संग्रह की कविताओं में भाव-वैविध्य तो है किन्तु भाव-गांभीर्य नहीं है। भावों में कहीं-कहीं बेतुकी अस्पष्टता भी आगई है जिसका सम्बन्ध कुछ लोग कवि के मानसिक विक्षेप से भी जोड़ते हैं। ये कविताएँ कला की दृष्टि से भी बहुत उत्कर्षमयी नहीं हैं, किन्तु भाषा, भाव और शैली के क्षेत्र में ये नवीन प्रयोग अवश्य हैं।

नये पत्ते (१९४६)

यह निरालाजी की प्रगतिवादी तथा प्रयोगवादी रचनाओं का संग्रह है। इसमें 'कुकुरमुत्ता' की भी सात कविताएँ संकलित की गई हैं। इनमें व्यंग्यात्यक कविताओं की प्रधानता है। साधारण बोलचाल की भाषा में लिखे गये व्यंग्य कलात्मक, मार्मिक एवं हास्यपुष्ट हैं। 'नये पत्ते' की भूमिका में स्वयं निराला ने लिखा है—"इस में हास्य की प्रचुरता, भाषा अधिकांश बोलचाल वाली। पढ़ने पर काव्य की कुंजों के अलावा ऊंचे-नीचे फारस के—जैसे टीले भी। अधिक मनोरंजन और बोधन की निगाह रक्खी गई है।" इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में वर्ग-संघर्ष से पीड़ित समाज के प्रति निराला की संवेदना और सहानुभूति व्यंजित हुई है।

इस संग्रह में सामाजिक और राजनीतिक व्यंग्य प्रधान कविताओं की अधिकता है। 'रानी और कानी' में कवि का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। कवि ने कुरूपता तथा निर्धनता को जीवन का अभिशाप बताया है। रानी गृहकार्यों में दक्ष है, चतुर है; पर उसका विवाह इसी कारण नहीं हो पाता कि वह निर्धन और कुरूप है। रानी और उसकी माँ के हृदयोद्गारों का जो चित्र कवि ने खींचा है वह बड़ा करुण और मर्मस्पर्शी है। साथ ही समाज के उस दृष्टिकोण की भर्त्सना भी है जो गुणों की उपेक्षा कर सौन्दर्य का ही उपासक बना हुआ है। 'गर्म पकौड़ी' और 'प्रेम-संगीत' में भी सामाजिक व्यंग्य है। 'प्रेम-संगीत' में उन मनचले नवयुवकों पर व्यंग्य है जो किसी भी युवती को देखकर उसके पीछे मरने लगते हैं।

बाम्हन का लड़का मैं उसमें प्यार करता हूं
जात की कहारिन वह, मेरे घर की पनहारिन वह,
आती है होते तड़का, उसके पीछे मैं मरता हूं।[2]

---

१. बेला, पृ० ३२
२. नये पत्ते—प्रेम संगीत

थोड़ों के पेट में वहुतों को आना पड़ा में आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था और आर्थिक शोषण का चित्रण है। वैज्ञानिक प्रगति के फल-स्वरूप कल-कारखानों का निर्माण जितना अधिक होता जा रहा है उतना ही शोषण बढ़ता जा रहा है, थोड़ों के हाथ में ही पूंजी एकत्र होती जा रही है।

'डिप्टी साहब आये', 'छलांग मारता चला गया, 'कुत्ता भोंकने लगा' आदि कविताओं में जमींदारी प्रथा पर व्यंग्य हैं। छलांग मारता हुआ मेंढ़क तथा भोंकता हुआ कुत्ता में कृषकों की दयनीय स्थिति का व्यंग्यात्मक चित्रण है। भौंक कर कुत्ते विना तक अपने प्रति किये गये अन्याय का प्रतिरोध करते हैं पर आज के युग में किसान प्रतिवाद किये अत्याचार सहते रहते हैं, यह कैसी विचित्र वात है।

'राजे ने अपनी रखवाली की' में सामंतवादी व्यवस्था पर व्यंग्य है। जनता इन्हीं राजाओं की चापलसी में लगी रही है। कवियों ने उनकी वहादुरी के गीत गाये, लेखकों ने उन पर लेख लिखे, इतिहासकारों ने इतिहास लिखे, नाटककारों ने उन पर रूपक लिखकर रंगमंच पर अभिनीत किये, पर वे धर्म का बढ़ावा दे देकर उन्हें ठगते ही रहे—धर्म का बढ़ावा रहा धोखे से भरा हुआ'।

'झींगुर डट कर बोला' और 'महंगू महंगा रहा' में क्रूर तथा अत्याचारी जमीदारों के साथ साथ राजनीतिक नेताओं पर भी व्यंग्य है। झींगुर और महंगू को कवि ने कृषक वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया है जो कि इन अनाचारियों का विरोध करने के लिए कटिवद्ध होते हैं।

'मास्को डायलॉग्स' में उन समाजवादी नेताओं पर व्यंग्य किया गया है जो देश का नेतृत्व ग्रहण करके भी मात्र स्वार्थ सिद्धि में लगे रहते हैं। ये प्रच्छन्न पूँजीपति हैं जो सिद्धान्त के रूप में ही 'मास्को डायलॉग्स' को आदर्श मानते है। गिडवानीजी इन्ही समाजवादियों के प्रतिनिधि हैं :—

> मेरे एक मित्र हैं श्रीयुत गिडवानी जी
> वहुत वड़े सोश्यलिस्ट,
> 'मास्को डायलाग्स' लेकर आए है मिलने
>
> ....
>
> फिर कहा मेरे समाज में
> वड़े-वड़े आदमी हैं,
> एक से है एक मूर्ख ;
> फांसना है उन्हें मुझे ;
> ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का।
> उपन्यास लिखा है ;
> जरा देख दीजिये।

तो प्रभाव पड़ जाय उल्लू के पट्ठों पर
मनमाना रुपया ले लूं इन लोगों से।[1]

'खुशखबरी' में निराला ने सिनेमा के घातक प्रभाव को बतलाया है। आधुनिक समाज में सिनेमा सबके आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। देशवासी अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होते जा रहे हैं। अगर पासपोर्ट मिलने की कठिनाई होती तो अभी तक सारा देश उदयशंकर और देविकारानी के पीछे लगा चला गया होता :

'कैद पासपोर्ट की नहीं तो कभी
देश आधा खाली हो गया होता ;
देविका रानी और उदयशंकर के
पीछे लगे लोग चले गये होते।[2]

'चर्खा चला' में कवि ने प्राचीनकाल से अबतक साहित्यिक एवं सामाजिक प्रगति के इतिहास पर व्यंग्यात्मक दृष्टिपात किया है।

इस संग्रह में 'वर्षा', 'राजोहरा,' 'स्फटिक शिला', 'कैलाश में शरत,' 'देवी सरस्वती' आदि कविताएं प्रकृति-चित्रण प्रधान हैं। 'वर्षा' में वर्षाकालीन प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण है। 'खजोहरा' में वर्षाकालीन ग्राम्य वातावरण चित्रित है। कविता के प्रारम्भ में कवि ने वर्षाकालीन बादलों का चित्रण किया है, उनकी उपमा हाईकोर्ट के वकीलों से दी है। वर्षाकाल में स्थान-स्थान पर आल्हा गाते हुए ग्रामीणों तथा झूला झूलती हुई स्त्रियों का भी वर्णन हुआ है, परन्तु कविता के अंत में कवि ने एक भौंडा-सा हास्य उपस्थित किया है। भतीजा होने का शुभ-समाचार पाकर ग्राम में आई हुई बूआजी तालाब पर स्नान करने के लिए जाती हैं। मार्ग के अनेक प्राकृतिक दृश्यों को देखकर उन्हें अपने कौमार्य का स्मरण हो आता है। तालाब पर पहुंचकर जैसे ही वे जल में प्रवेश करती हैं एक खजोहरा उनके शरीर पर रगड़ खा जाता है, सारे में खुजली होने लगती है। 'स्फटिक शिला' में स्फटिक शिला (चित्रकूट) की यात्रा के मार्ग में आने वाले रम्य प्राकृतिक दृश्य चित्रित हैं। विभिन्न पर्वतों, नदियों, तलावों, आश्रमों, वृक्षों एवं पशु-पक्षियों आदि का वर्णन इस कविता में हुआ है।

'कैलाश में शरत्' में निराला ने कैलाश-यात्रा का वर्णन किया है। यह सम्पूर्ण वर्णन कल्पित है और कल्पना भी नितान्त असम्बद्ध है। प्रारम्भ में कवि ने बतलाला है कि इस यात्रा में उनके साथ स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस की पत्नी, स्वामीजी के शिष्य तथा अनेक राजपुरुष थे। ये लोग अफगानिस्तान होते हुए कैलाश तक जाते हैं। तातारी पथ-प्रदर्शक उन्हें अनेक रम्य स्थल दिखाते हैं।

१. नये पत्ते, 'मास्को डायलाग्स', पृ० १८-१६
२. नये पत्ते, 'खुश खबरी'

इस यात्रा में आने वाले प्राकृतिक दृश्यों के साथ मानसरोवर का अत्यन्त कल्पनापूर्ण चित्रण हुआ है। मानसरोवर का शरद कालीन सौन्दर्य देखिये—

शरत् काल ; कमलों पर
आभा विरोधाभास,
उतरी है चांदनी,
मुंद चले इन्दीवर
कोकनद शतदल,
पर अति-विकसित जो
ज्यों के त्यों रह गये।
मदिरा सुगंध की
ज्यों की त्यों ढलती हुई।
चन्द्र आकाश पर पूरी तरह निकल आया।
स्निग्ध वह चन्द्रिका
उतरी सरोवर पर
स्वर्ग की अप्सरा
स्नान करने के लिए
लोक-लोचनों के पर
जिसकी छवि देख कर
कमल वे वे मुंद गये।[1]

'देवी सरस्वती' के कवि ने सरस्वती की छवि अंकित की है, देवी सरस्वती को ग्राम-निवासियों के रूप में ही चित्रित किया है। षड्ऋतुओं का अत्यन्त मनोरम वर्णन हुआ है। षट्ऋतुओं के रूप में संपूर्ण ग्राम्य वातावरण ही चित्रित है। यह षड्ऋतु वर्णन की एक नवीन शैली है। अन्त में कवि ने कालिदास, सूर, तुलसी आदि सरस्वती के साधकों के रूप में वाणी के विकास को दिखलाया है।

इस संग्रह की 'तिलांजलि' कविता में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के स्वर्गीय पती श्री आर० एस० पंडित के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की गई है।

'रामकृष्ण देव के प्रति' में स्वामी रामकृष्णदेव की प्रशस्ति है। रामकृष्णदेव जी से निराला व्यक्तिगत रूप से परिचित एवं प्रभावित थे।

'खून की होली जो खेली' में सन् १९४६ में आई० ए० एस० के विद्यार्थियों पर किये गये गोली कांड के प्रति घृणा का भाव व्यक्त किया गया है।

इसके अतिरिक्त 'कालीमाता' और 'चौथी जुलाई' के प्रति कविताएं विवेकानन्दजी की कविताओं से अनूदित हैं।

---

१. नये पत्ते—कैलाश में शरत्।

अर्चना, आराधना और गीतगुंज

अर्चना-आराधना में गीत संकलित हैं। अर्चना के गीत सन १९५० में लिखे गये थे। विषय की दृष्टि से इन संग्रहों में भक्तिपरक गीतों की बहुलता के साथ-साथ जन-जीवन और युग-जीवन की तसवीर भी मिलेगी। इतना ही नहीं प्रकृति के गीत, राष्ट्रीय भावना, जन-जागरण और लोक गीतों की भी हलकी-सी अनुभूति कवि को हुई है। 'अर्चना' को भी एकदम सामाजिकता से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। 'अर्चना' की स्वयं उक्ति में निराला ने लिखा है—'प्रस्तुत गीतों को तद्वत् सफलता के न होने का कारण खड़ी बोली का पाठ इसलिए गले से सफलतापूर्वक न उतर जाना है। साधारण जन देहातों में यह भाषा नहीं बोलते। उनके गले और आधुनिक शरीर की नेमि अभि मंज तज कर मसृण नहीं हुई, खड़ी बोली की गाड़ी के और चलते रहने की आवश्यकता है, ये गीत जैसे उसी की पूर्ति करते हैं। यथाशक्ति सुरचित शब्दों की शृंखला रखी गई है सहज ही उच्चरण हो जाय, जिससे आधुनिक गीतों की मोड़ और स्वर कम्पन, प्राचीन शब्दोच्चारण की दीवारों को पार करके अपनी सत्यता पर समासीन हों।

गीतिका के गीतों में जैसे नवीनता और समता मिलती है वैसी ही समता अर्चना के गीतों में उच्चारण की दृष्टि से मिलेगी। लगता है जैसे इन गीतों के स्वर ताल, लय सभी ने अंग्रेजी का ऋण स्वीकारा है। गीतिका के गीतों में जो भक्ति का स्वर फूटा था वही अर्चना के बोलों में कुछ अधिक गम्भीरता से सुनाई पड़ता है। अब तक की अपनी यात्रा में थका-हारा कवि जैसे भवसागर पार करने के लिए अर्चना को वाणी दे रहा हो। अर्चना का कवि विश्व भरण का अश्रय टटोलता हुआ कहता है—

'पतित को सित हाथ गहकर
जो चलाती हैं सुपथ पर,
उन्हीं का तू मनन कर-कर
पकड़ निश्शर विश्व-तरणी।'

परिस्थितियों से जूझता हुआ कवि जब थक जाता है तो भक्तिकालीन कवियों की भांति वह दैन्य की वाणी बोलता है। वह संसार सागर से अधिक त्रस्त हो बार-बार यह पुकार लगाता प्रतीत होता है—'भव सागर से पार करो हे', 'सागर से उत्तीर्ण तरी हो', 'पार करो यह सागर', तरणि तार हो' और 'कठिन हो संसार' ये कुछ ऐसी पंक्तियां हैं जिनमें दीन भक्त का स्वर है। डा० धनंजय वर्मा ने लिखा है कि 'गीति सृष्टि का दूसरा मोड़ अर्चना आराधना में मिलता है। यहां निराला का स्वर हिन्दी की भक्तियुगीन भावधारा की निकटता ही नहीं, समता भी करता है। इन गीतों में भक्ति के वैसे ही आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी भावों की अभिव्यंजना हुई है—लेकिन इस भक्ति को किसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध न करना होगा।'[1] अर्चना

१. निराला काव्य और व्यक्तित्व, पृ० १२९

और आराधना में भक्ति का जो स्वर है उसका कारण यह हो सकता है कि कवि अद्वैत-दर्शन और ब्रह्म ज्ञान को सहजसंवेद्य बनाने के लिए ही यह सब कर रहा है। श्री जानकी वल्लभ शास्त्री निराला के इन गीतों में फूटे भक्ति के स्वर को वयस् का प्रभाव मानते हैं वे कहते हैं कि 'अर्चना' में यह स्वर वयस् के प्रभाव के कारण कदाचित् अधिक भाव विगलित हो गया है।'[1]

अतः यह स्पष्ट है कि 'अर्चना' के गीतों का मूल स्वर भक्तिपरक और प्रार्थनापरक है। इन गीतों में हलकी सी विषाद की छाया भी विद्यमान है। इस विषाद की छाया के दर्शन तो 'अणिमा' के गीतों में कवि ने यह कहते हुए किये हैं—

'मैं अकेला
देखता हूँ आरही
मेरे दिवस की सांध्य बेला

इसी प्रकार संघर्ष से प्रेरित अवसाद के चित्र अर्चना में यों देखे जा सकते हैं—

'जैसे मैं बाजार में बिका
कौडी मोल—पूर्ण शून्य दिखा;
....
किससे मैं कहूँ व्यथा
अपनी जित विजित कथा ?'

'अर्चना' के ५९ वें गीत में तो जैसे विषाद से भरा निराला का स्वर हाहाकार कर उठा है। चुटीले हृदय की स्वर लहरी पाठक सुनें—

'चोट खाकर राह चलते
होश के भी होश टूटे,
हाथ जो पाथेय थे, ठग
ठाकुरों ने रात लूटे
कण्ठ रुकता जा रहा है
आ रहा है काल देखो" (अर्चना—गीत ५९)

'अर्चना' में उन दार्शनिक गीतों की संख्या नहीं के बराबर है, जिसमें अद्वैत दर्शन को अभिव्यक्ति मिली है। हाँ, जीवन के परिप्रेक्ष्य में कहीं-कहीं दर्शन का पुट है। 'अर्चना' के सत्तरवें गीत में कवि लघु-तटिनी के तट पर खड़ा हुआ कहता है—

"किसी विछव-मय का विकास है,
सलिल-अनिल उर्मिल विलास है
....
राग-राग से जीवन डगमग,
सुख के उठते हैं पुलकित डग,
रह जाती हैं अपल पुतलियाँ।"

१. आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री : नई धारा, जून १९५१

प्रकृति और शृंगार से निराला को प्रेम रहा है। 'अर्चना' में भी कुछ इस प्रकार के छुट पुट गीत हैं जिनमें विरह-वेदना प्रतिध्वनित है और वसंत का चित्र भी मिलता है फागुन की शोभा का क्या कहना है वह तो अट नहीं रही है। वसन्त के स्वागत में कवि कहता है—

> मधु के फूटे अधर-अधर पर
> ....
> शत-शत वल्लरियां नतमस्तक
> झुक कर पुष्पाधर मुसकाए'

इसी प्रकार 'मुक्ता जल बरसो', बादल गीत में सावन का बड़ा मोहक चित्र है। स्पष्ट है कि अर्चना में भक्ति के बोलों के साथ-साथ प्रकृति, विषाद और शृंगार आदि के चित्र भी विद्यमान है। भाषा की दृष्टि से शब्दावली सरल है। कुछ नये प्रयोग भी मिलते है। 'कुछ पंक्तियों में व्याकरण की त्रुटियाँ भी मिलती-हैं। भाषा की यह सरलता मुहावरों से मेल-जोल करके आगे बढ़ी है। हाँ, अनुप्रास की कुछ छिछली पंक्तियाँ निराला के मानसिक विक्षेप का परिचय अवश्य देती है।

आराधना अर्चना की ही एक विकसित धारा है, वही भाव और भाषा भी वही है। विषयों और शैली में भी कोई नवीनता नहीं है। आराधना की शब्द-योजना बड़ी चमत्कारपूर्ण है—

> "छलके-छलके पैमाने क्या
> आये बेमाने माने क्या
> हलके हलके हलके न हुए
> दलके-दलके दल के न हुए।"[1]

इस प्रकार की पंक्तियाँ भाषा के चमत्कारिक रूप को प्रस्तुत करती हैं। ये भाषा और भाव की दृष्टि से श्रेष्ठ और स्पष्ट पंक्तियाँ, नहीं कही जा सकती हैं। डा० बच्चनसिंह ने लिखा है—"गीतिका की भाँति इन संग्रहों में अप्रतिम भाव-विन्यास, चाहे न मिले, पर इसमें भी संगीत, काव्य और सामाजिक चेतना का कुछ ऐसा विनियोग हुआ है कि इन संग्रहों के कुछ गीतों का स्थायी महत्व है।"[2] वस्तुतः आराधना, अर्चना और गीति गुंज में कुछ इस प्रकार के गीत भी हैं जो संगीत और काव्य दोनों ही दृष्टियों से गीतिका से कई कदम आगे हैं। जिस प्रकार का चित्रण 'अणिमा' का कवि—'स्नेह निर्झर वह गया है', और अर्चना का कवि 'मैं बाजार में बिका', और 'चोट खाकर राह चलते, होश के भी होश छूटे' जैसी पंक्तियों में कर चुका था वही अवसाद आराधना और गीत गुंज में यों आया है—

> "दुखता रहता है अब जीवन
> पतझड़ का जैसा वन उपवन
> ....

---

१. आराधना—गीत, ३०
२. डा० बच्चनसिंह : क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० १८७

डालियाँ बहुत सी सूख गईं,
उनकी न पत्रता हुई नई।"[1]

और—

भग्न तन, रुग्णमन,
जीवन विषण्ण वन
क्षीण क्षण-क्षण देह,
जीर्ण सज्जित गेह
घिर गए हैं मेह;
प्रलय के प्रवर्षण[2]

इन गीतों में कवि का वैयक्तिक विषाद ही नहीं प्रतिध्वनित हुआ है वरन् सामाजिक अवसाद या युगजीवन की खिन्नता भी है। सामाजिक अंधी रूढ़ियों से जूझने वाले कवि निराला ने कई गीतों में विद्रोह का स्वर भी सुनाया है जिसमें शंकर का हलाहल पान करके भी कवि समाज को अमृतदान देने वाला है—

दुःख के सुख जियो, पियो ज्वाला,
शंकर की स्मर-शर की हाला
शशि के लांछन हो सुन्दरतर,
अभिशाप समुत्कल जीवन-वर
वाणी कल्याणी अविनश्वर
शरणों की जीवन पण माला[3]

आराधना और गीत गुंज दोनों में जन मंगल की कामना प्रतिध्वनित हुई है। इन संग्रहों में कवि प्रार्थना करता है माँ से जो दिव्य शक्ति है, आदि शक्ति है, आराधना का प्रथम गीत प्रार्थनापरक है। इन गीतों में वर्णनात्मक शैली के प्रयोग ने काव्यात्मकता को जैसे ढक लिया है। 'आराधना' का कवि वरदान माँगता हुआ कहता है कवि को बड़ी आशा है—

माँ मानस के सित शतदल को
रेणु गंध के पंख खिला दो,
जग को मंगल-मंगल के पग
पार लगा दो, प्राण मिला दो,
तरु को तरुण पत्र मर्मर दो[4]

१. आराधना, गीत २२
२. गीतगुंज, पृ० ५०
३. आराधना, गीत २
४. आराधना, गीत ८

'आराधना' और 'गीत गुंज' में कवि ने व्यंग्य भी किया है—आज संसार नवीनता की धुन में किस प्रकार अपने को भूलकर अपने रूप को विकृत करता है—इस पर व्यंग्य करते हुए निराला कहते हैं—

मानव जहाँ बैल घोड़ा है
कैसा तन-मन का जोड़ा है
किस साधन का स्वांग रचा यह
किस बाधा की बनी त्वचा यह
देख रहा है विज्ञ आधुनिक
वन्य भाव का यह फोड़ा है।[1]

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि अर्चना, आराधना में आकर कवि का स्वर भक्ति-रस से ओत-प्रोत हो गया है। निराला सभी ओर से निराश होकर और अनेक संघर्षों से जूझने के बाद भक्ति की ओर उन्मुख हुए हैं। भक्ति की नाम-स्मरण और कीर्तन-सम्बन्धी विशेषताओं से सम्बन्धित कई गीत आराधना में मिलते हैं। आराधना के गीतों में ५१, १२, १४ और १८ नम्बर के गीत इसके साक्षी हैं। वैसे देखा जाय तो शायद ही ऐसा कोई गीत होगा (अर्चना, आराधना में) जिसमें भक्ति का स्वर हलके, गहरे रूप में चित्रित न हो। निराला के इन काव्यों को पढ़कर भक्तिकाल की स्मृति हो आती है। भक्तिपरक गीतों के साथ ही उच्चकोटि के शृंगारिक गीत भी आराधना में मिलते हैं। आराधना का अन्तिम गीत 'यह गाढ़ तन आषाढ़ आया, दाह दमक लगी' और 'रंग रंग से गागर भर दो' इसी कोटि के गीत हैं। जिस प्रकार प्रेमाख्यानक कवि बारहमासों के वर्णन में जन-जीवन की मार्मिक छवियों को बड़े ही प्रभावोत्पादक ढंग से चित्रित किया करते थे, उसी प्रकार इस चतुर्मास में भी विरहिणी की मानसिक दशाओं का चित्र खींचा गया है। कवि ने बड़े मनोयोग से इस चित्र को उतारा है—

फिर लगा सावन सुमन मखन, झूलने घर-घर पड़े;
सखि, चीर सारी की संवारी झूलती, झोंके बड़े
वन मोर चारों ओर बोले, पपीहे पी-पी-रटे
ये बोल सुनकर प्राण डोले, ज्ञान भी मेरे हटे
आदि…

गीत गुंज विषय और शैली की दृष्टि से वहीं प्रतिष्ठित है जहाँ अर्चना और आराधना। वाणी की विनयशीलता और संघर्षों से जूझने के बाद का निराशा का स्वर इसमें उभरा हुआ है। प्रकृति का वह रूप यहाँ भी है जिसमें शब्दों का कृत्रिम रंग ढंग नहीं आया है और न अनुप्रास का बढ़ता हुआ योग ही मिलता है। भाषा

१. गीतगुंज, पृ० ५१

का सारल्य अनुप्रास का बाहुल्य और नये और साभिप्राय मुहावरों के प्रयोग ने अभिव्यंजना को सार्थक बनाया है। अतः स्पष्ट है कि निराला काव्य अनेक मोड़ों से होता हुआ एक ऐसा शरणस्थल खोज लेता है जहाँ पर उसे सुख ही सुख मिलता है। उनकी कविताओं के विषय जो प्रारम्भ मे थे वे ही थोड़े बहुत परिवर्तन से आगे की रचनाओं में देखे जा सकते हैं। विद्रोह का स्वर जो पूर्ववर्ती काव्य में सुना था वह गीत गुंज तक आते आते शान्त हो गया है और अर्चना, आराधना और गीत-गुंज में भी इसी स्वर की गूंज सुनाई पड़ती है।'

: ३ :

निराला के काव्य में समाज-चित्रण

साहित्य और समाज

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। साहित्य जीवन को भुला दे, यह कभी सम्भव नहीं है। यद्यपि यह होता है कि साहित्य कभी जीवन के गहरे चित्र प्रस्तुत करता है कभी हल्के, फिर भी जीवन-चित्रों का एकान्ताभाव कभी नहीं होता। साहित्य, चाहे जीवन की आलोचना हो या चित्र, जीवन से विरहित नहीं होता। साहित्य कैसा ही क्यों न हो—भले ही वह सार्वकालिक हो, युग-साहित्य हो अथवा सामयिक साहित्य-वह मानव जीवन को छोड़ कर अपने को व्यर्थ सिद्ध किये विना नहीं रह सकता।

साहित्य के स्थूल रूप से दो काम हैं—समाज को अभिव्यक्त करना तथा उसे प्रेरित करना। जो रचना समाज को अभिव्यक्त करती हुई उसे प्रेरणा भी देती है, वह प्रशस्त होती है। किसी भी जाति या समाज की उन्नति में साहित्यिक योग रहता है, इतिहास में इसका साक्ष्य मिल सकता है। इसीलिए साहित्य को समाज का मस्तिष्क[1] कहा गया है।

साहित्य में समाज की जो अभिव्यक्ति होती है उसमें सुन्दर के साथ 'सत्य' और 'शिव' का रहना भी अनिवार्य है। किसी तत्व का प्राधान्य हो सकता है। जहां अभाव होता है वहां साहित्य संज्ञा विगलित होती है। 'सुन्दर' आकर्षक होता है, 'सत्य' आधार होता है और 'शिव' प्रेरक होता है। कल्याण की व्यवस्था 'शिव' के सम्बन्ध से ही होती है।

इसमें सन्देह नहीं कि निराला का काव्य समकालीन समाज का चित्र प्रस्तुत करता है, किन्तु उसमें समाज के रंगीन चित्र नहीं है। नंगे रेखा-चित्रों से कवि ने समाज के स्वरूप को अवगत किया-कराया है। सामान्यतया निराला का उर अति द्रवणशील है, किन्तु विषमताओं और विद्रूपताओं के घटाटोपों में वह अति संतप्त होकर खौलने भी लगता है। निराला विद्रूपताओं से समझौता करना नहीं जानते और न वे यही चाहते हैं कि निराला के पाठक उनके साथ समझौता करें। वे तो

---

१. 'लिटरेचर इज दी मेन आफ ए मेनिटा'—वर्सफोल्ड

उनको काँटे की तरह उखाड़ फेंकने के लिए ही प्रयत्नशील है। सामाजिक खन्दक-खाइयों को देखकर कवि निराला का अन्तर घुटता है। ऐसी अनुभूति की व्यंजना निराला दो परिपार्श्वों में करते हैं—एक तो है उनको समाप्त कर देने वाला परिपार्श्व और दूसरा है उनके प्रति सावधान करने वाला परिपार्श्व।

निराला के समय में समाज तीन प्रमुख विद्रूपताअ से आपीड़ितों है—एक तो आर्थिक वैपम्य दूसरी राजनीतिक और तीसरी धार्मिक। आर्थिक वैपम्य समाज का भयंकर शत्रु है। इसने समाज को अपने व्याघातों से जर्जर कर डाला है। एक ओर भव्य अट्टालिकाओं में विलास की सामग्री सँजोई हुई हैं और दूसरी ओर जीर्ण कुटिया में भोजन-वस्त्र तक उपलभ्य नहीं हैं। विपमता के इन्हीं दो छोरों के बीच में समाज का उत्थान-पतन दृष्टिगोचर होता है। इस विपमता की अनुभूति निराला ने बड़े निकट से की है। राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों का हाथ भी इस विपमता के बढ़ाने में ही रहा है।

अपने जीवन के उप: काल में ही निराला को विपम आर्थिक परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ा था। भुक्त भोगी होने के कारण समाज के शोपित एवं आर्थिक विपन्नता से पीड़ित वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति मात्र बौद्धिक ही नहीं, क्रियात्मक भी रही। इसके अतिरिक्त सन् १९४२ के बंगाल के अकाल व उसके फलस्वरूप विघटित व पीड़ित समाज ने उनके संवेदनशील हृदय को अत्यधिक प्रभावित किया। निराला साधारण जन-जीवन के निकट सम्पर्क में आये थे, इस कारण उनकी कविताओं में वर्तमान समाज का यथा तथ्य चित्रण हुआ है। अपने प्रगतिवादी काव्य में निराला ने वाणिक विपमताओं से पीड़ित, साम्राज्यवादी अत्याचारों से व्याहत व रूढ़ियों में जकड़े हुए समाज के अनेक व्यंग्यात्मक चित्र खींचे हैं। निराला के ये सामाजिक व्यंग्य बड़े मर्मस्पर्शी हैं। "ऐसा शिप्ट व्यंग्य, सच्ची अंतर्व्यथा से निकला हुआ, जो पढ़ते ही सहृदय को प्रभावित कर सके, साहित्य में बहुत कम देखने को मिलता है।"[1] निराला के ये व्यंग्य मानवता के प्रति उनके असीम प्रेम के परिचायक हैं।

निराला की सामाजिक कविताओं को मुख्यतया तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) प्रथम प्रकार की रचनाएँ वे हैं जिनमें उन्होंने आर्थिक विपमता से पीड़ित समाज का चित्रण किया है और पूँजीवादी सभ्यता को घातक बताते हुए पूँजीवादियों पर अनेक प्रकार से व्यंग्य किये हैं, (२) द्वितीय प्रकार की रचनाओं में स्वार्थी एवं धूर्त राजनीतिक नेताओं की सीवन उधेड़ी है, (३) तृतीय प्रकार की रचनाओं में धार्मिक कुरीतियों पर व्यंग्य किये हैं।

आर्थिक दशा का चित्रण

निराला ने प्रयोगवादी रचनाओं में दीन, दलित एवं निम्न वर्ग की करुण

१. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य—डा० रामविलास शर्मा, पृ० १२५

स्थिति का चित्रण किया है। उनकी 'भिक्षुक' 'तोड़ती पत्थर', 'दीन' आदि कविताओं में समाज के इसी उपेक्षित अंग का चित्रण हुआ है। 'दीन' कविता में उत्पीड़ित समाज के विषय में कवि कहता है—

"यहां कभी मत आना
उत्पीड़न का राज्य, दुख ही
यहां है सदा उठाना।
क्रूर यहां पर कहलाता शूर,
और हृदय का शूर सदा ही दुर्बल क्रूर
स्वार्थ सदा रहता परार्थ से दूर,
यहां परार्थ वही जो रह
स्वार्थ से ही भरपूर।"[1]

'भिक्षुक' कविता में निराला ने क्षुधित भिक्षुक की दयनीय स्थिति का करुणोत्पादक चित्रण निम्नलिखित शब्दों में किया है—

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी-भर दाने को—भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता—[2]

इस भिक्षुक के साथ ही दो बच्चे हैं जो दाएँ-बाएँ हाथ से अपने भूखे पेट को मलते हुए चल रहे हैं, भूख से इनके ओंठ सूख रहे हैं, आँखों से अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं और भूख से व्याकुल होकर सड़क पर पड़ी हुई जूठी पत्तलों को चाट रहे हैं—

'चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।[3]

इसी प्रकार सड़क के किनारे पत्थर तोड़ती हुई मजदूरनी का भी करुण चित्र 'तोड़ती पत्थर' कविता में अंकित हुआ है। ग्रीष्म के प्रखर मध्याह्न आतप में, जबकि झुलसाती हुई लू चल रही है, वह गुरु हथौड़े के प्रहार से पत्थर तोड़ रही है—

चढ़ रही थी धूप;
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता रूप,
उठी झुलसाती हुई लू,

१. परिमल, पृ० १४४
२. वही, पृ० १२३
३. परिमल, पृ० १२४

रुई ज्यों जलती हुई भू.
गर्द चिनगी छा गई,
प्रायः हुई दुपहर :—
वह तोड़ती पत्थर ।[1]

भिक्षुक व पत्थर तोड़ने वाली मजदूरनी दोनों की यह दयनीय स्थिति आर्थिक विषमता के परिणामस्वरूप है ।

निराला वर्तमान अर्थ-व्यवस्था से अत्यधिक असंतुष्ट थे । वे चाहते थे कि अर्थ का समान रूप से वितरण हो, 'सारी संपत्ति देश की हो । यद्यपि उन्होंने मार्क्स-वाद का स्पष्ट रूप से समर्थन कहीं नहीं किया है लेकिन उनकी रचनाओं से यह स्पष्ट है कि वे साम्यवाद के समर्थक थे । उनकी इस विचारधारा की अभिव्यक्ति 'वेला' की इन पंक्तियों में हुई है—

'देश को मिल जाय जो
पूंजी तुम्हारी मिल में है ।'[2]

निराला का विचार था कि शीघ्र ही इस साम्राज्यवादी व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति का आह्वान किया जायगा और वह होता अभावग्रस्त शोषित समाज की ओर । 'वेला' की निम्नलिखित पंक्तियां इसी क्रांति की सूचना देती हैं—

'जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ आओ ।
आज अमीरों की हवेली,
किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अंधेरे का ताला,
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ ।'[3]

निराला के 'बादल' क्रांति के प्रतीक हैं, जो शोषित कृषकों से आमंत्रण पाते हैं, पर उनसे भयभीत होता है शोषक वर्ग, जिसने उन कृषकों का सारा खून चूस लिया है, उन्हें अस्थिपिंजर मात्र रहने दिया है—

रुद्ध कोष है, क्षुब्ध तोष,
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक-अंग पर कांप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जन से बादल ।
त्रस्त नयन-मुख ढाप रहे हैं ।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,

१. अनामिका, पृ० ७६
२. वेला, पृ० ६७
३. वही, पृ० ७०

ऐ विप्लव के वीर ।
चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही हैं आधार,
ऐ जीवन के पारावार ।[१]

निराला ने पूंजीपतियों पर कस-कसकर प्रकार किये हैं । ये पूंजीपति न जाने कितने मनुष्यों को गुलाम बनाये उनका शोषण कर रहे हैं । श्रमजीवी पसीना बहाते है और ऐश्वर्यभोग करते है उद्योगपति मिल मालिक । 'कुकुरमुत्ता' में निराला ने कुकुरमुत्ता को सर्वहारा वर्ग का प्रतीक व गुलाब को शोपक वर्ग का प्रतीक बनाकर पूंजीवादियों पर व्यंग्य किया है । कुकुरमुत्ता गुलाब को संबोधित करके कहता है—

अबे सुन वे गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू रंगोग्राब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपीटलिस्ट
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रखा, सहाया जाड़ा घाम ।[२]

'नये पत्ते' संग्रह की 'घोड़ों के पेट में बहुतों को आना पड़ा'[३] नामक कविता में भी कवि ने आधुनिक पूंजीवादी समाज की दुस्साधना का चित्रण किया है । आज मानव विज्ञान के क्षेत्र में जितनी प्रगति हो रही है, अधिकाधिक कल-कारखानों का निर्माण हो रहा है, उतना ही आर्थिक शोषण बढ़ता जा रहा है । कुछ उद्योगपतियों के हाथों में ही पूंजी का केन्द्रीकरण हो रहा है ।

'कुत्ता भौंकने लगा'[४] कविता में किसानों की शोचनीय स्थिति वर्णित है । इन किसानों की खेती पाले से नष्ट हो गई है, पर डिप्टी साहब अपने कारिन्दों द्वारा लगान वसूल करने में नहीं चूकते हैं । कोई भी किसान इसका विरोध नहीं करता है । इसी समय पास बैठा हुआ कुत्ता भोंक उठता है । उसे भौंकने को कवि अन्याय के प्रतिरोध का प्रतीक मानता है । खेद है कि कुत्ते तक अन्याय का प्रतिरोध करते हैं, पर आज के सामन्तवादी समाज में निम्न वर्ग अन्याय सहता हुआ भी मौन रहता है ।

'झींगुर डट कर बोला',[५] 'छलांग मारता गया',[६] 'डिप्टी साहब'[७] आदि

---

१. परिमल, पृ० १८८
२. कुकुरमुत्ता,
३. नये पत्ते, पृ० २२
४. नये पत्ते, पृ० ५४
५. वही, पृ० ५६
६. वही, पृ० ८५
७. वही, पृ० ८६

कविताओं में भी कवि ने जमींदारों के अनाचारों तथा अत्याचारों का पर्दाफाश करते हुए कृषकों की असहाय स्थिति का चित्रण किया है।

आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था में अर्थ ही सर्वस्व है, यहाँ तक कि माँ-बाप, मामा-नाना आदि सभी के सम्बन्ध अर्थाश्रित हैं अर्थ ही अनेक सामाजिक विकृतियों का कारण बनता है। 'अणिमा' की निम्नोक्त पंक्तियों में कवि ने यही संकेत दिया है—

'चूंकि यहां दाना है
इसीलिए दीन है, दीवाना है।
लोग हैं, महफिल है,
नग्में हैं, साज है, दिलदार है और दिल है,
शमा है, परवाना है।
....
अम्मा है, बप्पा है
झापड़ है और गोलगप्पा है,
नौजवान मामा है और बुड्ढा नाना है,
चूंकि यहां दाना है।'[1]

समाज में वकीलों का क्या रवैया रहता है, इसे भी निराला भुला नही पाये हैं। वकीलों का गरीबों के प्रति उपेक्षा का भाव रहता है। ये भी पैसे की ओर ही आकृष्ट होते हैं इन वकीलों पर 'खजोहरा' कविता में किया गया व्यंग्य देखिये—

दौड़ते हैं बादल ये काले-काले,
हाईकोर्ट के वकले मतवाले
जहाँ चाहिए वहां नहीं बरसे,
धान सूखे देखकर नहीं तरसे।
जहां पानी भरा वहाँ छूट पड़े
कहकहे लगाते हुए टूट पड़े[2]

राजनीति

निराला ने राजनीतिक गतिनिधियों पर भी दृष्टि डाली है। राजनीतिक नेताओं पर इन्होंने अनेक चोटें की है। ये नेता पैसे के बल पर ही नेता बन बैठे हैं। इनके प्रत्येक कार्य में प्रदर्शन व यश-प्राप्ति की भावना रहती है। इनको समाज व देश से अधिक अपने वैयक्तिक स्वार्थों की चिन्ता रहती है। अपने कर्तव्यों का इन्हें तनिक भी ध्यान नहीं रहता है। ये अपने अधिकारों का उपयोग स्वार्थसिद्धि के लिए करते हैं। 'बन बेला' कविता में इन्हीं नेताओं पर कवि ने व्यंग्य किया है। प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन करते-करते सहसा कवि सोचने लगता है—

---

१. अणिमा, पृ० १०३
२. नये पत्ते, पृ० ११—खजोहरा

'इतना भी नहीं, लक्षपति का भी यदि कुमार
होता मैं शिक्षा पाता अरब-समुद्र पार,
देश की नीति के मेरे पिता परम पण्डित
एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल-चित
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार,
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिधार।'[१]

'महंगू महंगा रहा' में इन्हीं ढोंगी नेताओं की वास्तविक स्थिति का पर्दाफाश किया है। एक कांग्रेसी नेता (पंडित जी) को लेकर लिखी गई इस कविता में कवि का व्यंग्य द्रष्टव्य है—

आजकल पंडित जी देश में विराजते हैं।
माता जी को स्वीजरलैंड के अस्पताल,
तपेदिक के इलाज के लिए छोड़ा है।
बड़े भारी नेता हैं;
कुइरीपुर गांव में व्याख्यान देने को
आए हैं मोटर पर
लन्डन के ग्रेजुएट,
एम. ए. और बैरिस्टर,
बड़े बाप के बेटे,
बीसियों पर्तों के अन्दर, खुले हुए।
एक-एक पर्त बड़े-बड़े विलायती लोग।
....
लैंडी जमीदारों को आंखों-तले रक्खे हुए,
मिलों के मुनाफे खानेवालों के अभिन्न मित्र,
देश के किसानों, मजदूरों के भी अपने सगे
विलायती राष्ट्र से समझौते के लिए।'[२]

देश पर विविध विपत्तियों के मेघ आच्छादित हैं, देश की आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है, देशवासियों के पास अन्न-वस्त्र का विषम अभाव है, पर देश के सर्वेसर्वा बने ये नेता निश्चिन्त होकर स्वार्थसाधन में संलग्न हैं। 'नये पत्ते' की निम्नलिखित पंक्तियों में कवि ने यह बताना चाहा है कि देश के सर्वोन्मुखी विकास में इन नेताओं का कितना योग रहता है—

काले-काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल
कैसे कैसे नाग मंडलाये, न आये वीर जवाहरलाल।
....

---

१. बनबेला—नये पत्ते, पृ० ८५
२. 'महंगू महंगा रहा'—नये पत्ते, पृ० ४६

....

महंगाई की बाढ़ आई, गांठ की छूटी गाढ़ी कमाई,
भूखे नंगे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल ।[1]

निराला ने 'मास्को डायलॉग्स' में उन समाजवादी नेताओं पर व्यंग्य किया है जो एक ओर तो 'मास्को डायलॉग्स' को आदर्श मानते हैं दूसरी ओर समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों पर अपना प्रभाव डालकर इच्छित स्वार्थ की पूर्ति करना चाहते हैं। समाज में अपना प्रभाव डालने के लिए साहित्य-सृजन के कार्य में पूर्णरूप से अक्षम होते हुए भी साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करना चाहते हैं। 'गिडवानी जी' इन्हीं समाजवादी नेताओं के प्रतिनिधि के रूप में चित्रिए हैं—

मेरे नए मित्र हैं श्रीयुत गिडवानी जी
बहुत बड़े सोश्यलिस्ट,
'मास्को डायलॉग्स लेकर आए हैं मिलने
....
फिर बोले, 'वक्त नहीं मिलता,
बड़े भाई साहब का बंगला बन रहा है,
देख भाल करता हूं।'
फिर कहा, 'मेरे समाज में
बड़े-बड़े आदमी हैं,
एक से है एक मूर्ख;
फांसना है उन्हें मुझे;
ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का।
उपन्यास लिखा है,
जरा देख दीजिये।
अगर कही छप जाय
तो प्रभाव पड़ जाय उल्लू के पट्ठों पर
मनमाना रुपया ले लूं इन लोगों से।[2]

धर्म

धर्म का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। धार्मिक विश्वासों एवं रूढ़ियों का जन्म समाज में ही होता है। निराला ने धर्म के नाम पर ढोंग करने वाले तथाकथित धार्मिकों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है। 'और गंगा के किनारे' कविता में उन्होंने धर्म के नाम पर उन पंडो पर व्यंग्य किया है जो धर्म की आड़ में यात्रियों को ठगते है—

'पंडों की सुधर सुधर धार है
तिनके की टट्टी के ठग हैं

---

१. नये पत्ते—'काले काले बादल', पृ० ४६
२. 'मास्को डायलॉग्स'—नये पत्ते

यात्री जाते हैं, श्राद्ध करते हैं
कहते हैं कितने तारे ।[1]

'दान' कविता में कवि ने उन अंधविश्वासी ढोंगी धार्मिकों का उपहास किया है, क्षुधित मानव को देखकर जिनकी करुणा उद्वेलित नहीं होती है, प्रत्युत उसका तिरस्कार कर कपियों को पूए खिलाते हैं—

'मेरे पड़ौस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन ;
झोली से पुए निकाल लिए,
बढ़ते कपियों के हाथ दिये,
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर ;
चिल्लाया किया दूर दानव ।
बोला मैं—'धन्य' श्रेष्ठ मानव ।[2]

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि निराला अन्य छायावादी कवि पंत, प्रसाद की भाँति समाज से असम्पृक्त कभी नहीं रहे । उनके व्यक्तित्व में वस्तुतः कुछ इस प्रकार के तत्वों का विनियोग हुआ था कि वे मानवता के पुजारी बन बैठे और इसी 'पुजारीपन' ने उन्हें समाज की ओर प्रेरित किया । वे समाज में दीन-दुःखियों के प्रति जब सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं तो समाज का रूप उनकी कविताओं में आ जाता है । जब वे कहते हैं कि 'देखा दुखी एक निज भाई, झट उमड़ वेदना आई' तो स्पष्ट ही मानव-समाज के प्रति उनका हृदय अधिक संवेदनशील प्रतीत होता है । जब वे व्यंग्य करते हैं (कि पँजीवादी और सामंतवादी प्रवृत्ति के पोषक लोग किस प्रकार निम्न वर्ग को सता रहे हैं) तो समाज की कथनीय स्थिति सामने आ जाती है । वस्तुतः निराला की सभी कृतियों में यह सामाजिकता कहीं हलके कहीं गहरे रूप में देखी जा सकती है । उनका सारा काव्य समाज से सम्पृक्त है क्योंकि वे सजग और सामाजिक चेतना सम्पन्न कवि हैं और इस प्रकार के कवि युग-जीवन की समस्याओं के प्रति उपेक्षा नहीं बरतते हैं । युग-जीवन और समाज की विविध स्थितियों का यह रूप निराला में केवल सूचना के रूप में नहीं आया है वरन् व्यापक परिधि में चित्रित है ।

---

१. 'आ रे गंगा के किनारे'—बेला, पृ० ५
२. 'दान'—अनामिका, पृ० २५

: ४ :

निराला की दार्शनिक पृष्ठभूमि

दर्शन और साहित्य का सम्बन्ध बेजोड़ है। बिना चिन्तन और चिन्ता की पीठिका के साहित्य का सृजन सम्भव नहीं है। साथ ही अनुभूतियों की अभिव्यंजना के बीच-बीच में भी चिन्तन-धारा प्रवाहित रहती है। यह धारा दो प्रकार की होती है—एक तो वह जिसके सम्बन्ध में मनुष्य का अपना विश्वास रहता है और दूसरी वह जिसको परम्परागत धारा का नाम दिया जाता है। निराला के काव्य में भी ये दोनों धाराएँ मिलती हैं। निराला की अपनी मान्यताएँ भी हैं। उनको जीवन-दर्शन में निहित कर सकते हैं, किन्तु परम्परागत दर्शन की धारा भी निराला के काव्य की भूमिका में दृष्टिगोचर होती है। इसमें अद्वैतवाद एवं योग की पद्धतियाँ प्रमुख हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि निराला के काव्य की महत्त्वपूर्ण दार्शनिक पीठिका अद्वैत दर्शन में सन्निहित है। योग की झाँकियाँ भी बड़ी प्रौढ़ हैं, जो निराला के चिन्तन और अध्ययन को प्रस्तुत करती हैं। निराला की दार्शनिक विचारधारा मूलतः अद्वैतवाद पर आधारित है।

दार्शनिक पत्र 'समन्वय' के सम्पादनकाल में निराला रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द के सम्पर्क में विशेष रूप से आये थे। इन दोनों ही महानुभावों के दार्शनिक सिद्धान्तों ने उनके व्यक्तित्व और काव्य को भी प्रभावित किया। 'रामकृष्ण की भाव-साधना और विवेकानन्द का वेदान्ती अद्वैतवाद, दोनों मिलकर मानों निराला में एकाकार हो गये।'[1] इस सम्बन्ध में निराला का अपना कथन है कि 'मैंने स्वामी विवेकानन्द जी का सारा वर्क हज्म कर लिया है। जब इस प्रकार की बात मेरे अन्तर से निकलती है, तो समझो, यह विवेकानन्द बोल रहे हैं।'[2]

सिद्धान्त रूप में निराला अन्य वेदान्तियों के समान जीव-ब्रह्म के अद्वैत तथा जगत् के मिथ्यात्व को स्वीकार करते हैं। अद्वैतवादियों के अनुसार जीव और ब्रह्म आपाततः भिन्न होते हुए भी तत्त्वतः एक ही हैं। 'तुम और मैं', 'जागरण' जैसी कविताओं में निराला का विशुद्ध अद्वैतवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। 'तुम और मैं' में

---

१. धनन्जय वर्मा, पृ० ५०

२. अभिनन्दन ग्रंथ—संस्मरण २७, पृ० ११४

निराला ने जीव और ब्रह्म की तात्विक एकरूपता को निम्नोक्त प्रकार से व्यक्त किया है—

तुम तुंग हिमालय शृंग,
और मैं चंचलगति सुरसरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कान्तकामिनी कविता॥[१]

इस प्रकार अद्वैतवाद के समर्थक होकर भी वे व्यावहारिक दृष्टि से जगत् के मिथ्यात्व को स्वीकार नहीं करते। वे सांसारिक विषय सुख-दुःख आदि को त्याज्य बताकर जगत् से विमुख होने की प्रेरणा नहीं देते।

विवेकानन्द के समान निराला भी मानवतावादी थे। विवेकानन्द का विचार था कि सब प्राणियों में उसी एक परम आत्मा का निवास है। अतः हमें सर्वभूतों के प्रति प्रेम एवं सौहार्द का भाव रखना चाहिये। जगत् को मिथ्या मानकर उसकी उपेक्षा करके संन्यास ग्रहण करने का उपदेश उन्होंने नहीं दिया। उन्होंने वेदान्त को समाज और देश के कल्याण के लिए अपनाया। वे लिखते हैं—'मुझे आत्म-ज्ञान की इतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी अद्वैत के कार्य रूप में लाने की। पहले रोटी, पीछे धर्म। जब तुम्हारे देशवासी भूखों मर रहे थे, तब तुम उन्हें धर्म खिला रहे थे, भूख की अग्नि को धर्म कभी शान्त नहीं कर सकता।......मैं तुम्हें फिर याद दिलाता हूँ कि सबसे पहले तुम्हें अपने देश के असंख्य पतित भाइयों का उद्धार करना होगा।'[२] निराला ने वेदान्त की इसी विचारधारा को स्वीकार करते हुए दर्शन को देश-सेवा के हेतु, पीड़ितों के उद्धार के हेतु स्वीकार किया। इस प्रकार निराला के दर्शन का आधार विवेकानन्द का व्यावहारिक वेदान्त रहा है। सम्भवतः इसी कारण निराला को 'विवेकानन्द का साहित्यिक प्रतिनिधि'[३] कहा गया है।

निराला का मस्तिष्क दार्शनिक का था, परन्तु हृदय कवि का। अस्तु, जहाँ उन्होंने विशुद्ध दार्शनिक दृष्टिकोण से जीव, जगत् आदि की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है वहाँ बुद्धि-पक्ष की प्रधानता से काव्य में दुर्बोधता तथा नीरसता आ गई है। जागरण, कण, पंचवटी-प्रसंग आदि कविताएँ इसके उदाहरण हैं; परन्तु अन्यत्र जहाँ वे भावुकता के प्रवाह में ही दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण करते चले हैं वहाँ काव्योचित सरसता के दर्शन होते हैं। इस प्रकार के स्थलों पर निराला की कला दर्शनीय है। 'उनकी 'कला' में एक विशेष प्रवृत्ति यह पाई जाती है कि ब्रह्म, जीव, जगत् के सम्बन्ध में वे अपने चिन्तन के सूत्र को पकड़ कर नीचे उतर आते हैं और हृदय के क्षेत्र में अनेकानेक रमणीय भाव-लहरियों के स्पन्दन से बौद्धिकता की

१. 'तुम और मैं'—परिमल, पृ० ८४
२. वेदान्त धर्म—स्वामी विवेकानन्द
३. अभिनन्दन ग्रंथ—संस्मरण २७, पृ० ९३

जड़ता को दूर कर, संवेदना के रंग में रंगकर, पूर्ण प्रौढ़ भाषा में उसे अभिव्यक्ति देते हैं।[1] निराला की 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'तुम और मैं' आदि काव्यात्मकता से परिपूर्ण दार्शनिक कविताएँ हैं।

निराला की कविताओं में दार्शनिक पुट से अधिक उत्कर्ष आ गया है, श्रीवृद्धि हुई है। 'गेय पदों की शाब्दिक सुघरता, संक्षेप में विस्तृत आशय की अभिव्यक्ति, सुन्दर परिसमाप्ति और प्रकाश निराला जी के काव्य को दर्शन-द्वारा उपलब्ध हुए हैं।'[2]

निराला कहीं औपनिषदिक अद्वैतवाद से प्रभावित हैं तो कहीं शंकर के मायाद्वैतवाद से।

उपनिषदों के अनुसार यह सब जो दृश्यमान है ब्रह्म ही है 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म'। ब्रह्म ही इस संसार का कारण है। ब्रह्म से ही सृष्टि का आविर्भाव होता है और उसी में तिरोभाव हो जाता है। ब्रह्म ही जगत् का निमित्त एवं उपादान कारण है। निराला भी संसार के विजय-पराजय, सुख-दुःख सबका अवसान ब्रह्म में ही मानते हैं—

जीवन की विजय, सब पराजय,
चिर अतीत आशा सुख, सब भय
सबमें तुम, तुममें सब तन्मय।[3]

सृष्टि-कर्तृत्व ब्रह्म का औपाधिक या तटस्थ लक्षण है जो व्यावहारिक दृष्टि से ही सत्य माना जा सकता है अर्थात् जब तक अज्ञान के कारण जगत् सत्य प्रतीत होता है तभी तक ब्रह्म का कर्तृत्व भी सत्य है। ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप-लक्षण निर्गुण, निस्पृह एवं निर्लेप है। निराला ने भी ब्रह्म को निःस्पृह, निःस्व, निरामय, निराकांक्ष आदि माना है—

निःस्पृह, निःस्व, निरामय निर्मम,
निराकांक्ष, निर्लेप, निरुद्गम,
निर्भय, निराकार, निःसम, राम,
माया आदि पदों की दासी।[4]

जीव वस्तुतः ब्रह्म स्वरूप है, पर अज्ञान के कारण अपने वास्तविक स्वरूप को भूला हुआ है और वह इस जगत् में ब्रह्म को पाने की चेष्टा करता है, जिस प्रकार अपनी ही देह की सुगंध से भ्रमित मृग उसे पाने की इच्छा से वनों में भागता फिरता है—

---

१. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ४७
२. गीतिका—प्रारम्भिक समीक्षा, पृ० २४
३. परिमल—'पारस', पृ० ७१
४. आराधना, पृ० ५०

पास ही रे हीरे की खान,
खोजता कहां और नादान ?
कहीं भी नहीं सत्य का रूप,
अखिल जग एक अन्धतम कूप,
ऊर्मि घूर्णित रे, मृत्यु महान्,
खोजता कहां यहां नादान।[1]

यही तो कबीर भी कहते हैं—

मोको कहां ढूढे बन्दे मैं तो तेरे पास में,
ना मैं देवल, ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।

शंकराचार्य के अनुसार 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या', 'जीवो ब्रह्मैव नापरः'—ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है जीव और ब्रह्म एक हैं।

'माया ईश्वर की शक्ति है। जिस तरह अग्नि की दाहकता अग्नि से अभिन्न है उसी तरह माया भी ईश्वर से अभिन्न है। इसी माया के द्वारा मायावी ईश्वर वैचित्र्यपूर्ण सृष्टि की अद्भुत लीला दिखलाते हैं।......हम लोग जो अज्ञानी हैं उसे देखकर भ्रम में पड़ जाते हैं और एक ब्रह्म के बदले अनेक विषय देखने लग जाते हैं। इस तरह माया हम लोगों के लिए भ्रम का कारण है। इस अर्थ में माया को अज्ञान या अविद्या भी कहते हैं। इसके दो कार्य है—जगत् के आधार, ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप को छिपा देना और उसे संसार के रूप में आभासित करना।'[2] इन दोनों कार्यों को क्रमशः आवरण तथा विक्षेप कहते हैं। निराला भी जगत् को मायाजन्य मानते हैं। वे भी जगत् की सत्ता को प्रातिभासिक स्वीकार करते हैं—

'व्यष्टि औ' समष्टि में नहीं है भेद,
भेद उपजाता भ्रम—
माया जिसे कहते है
जिस प्रकाश के बल से
सौर ब्रह्माण्ड को उद्भासमान देखते हो
उससे नहीं वंचित है एक भी मनुष्य भाई
'व्यष्टि औ' समष्टि में समाया वही एक रूप,
चिद्घन आनन्द-कन्द।[3]

कुछ उपनिषदों के अनुसार आत्मा से पूर्व पंचभूतों में सूक्ष्मतम भूत आकाश की उत्पत्ति हुई, तदनन्तर अन्य स्थूल-भूतों की उत्पत्ति हुई। निराला ने भी 'जागरण' कविता में संसार को शब्दज ही बतलाया है—'शब्दज संसार यह' शब्द आकाश का ही गुण है।

---

१. गीतिका, पृ० २७
२. भारतीय दर्शन, पृ० २३७-२३८
३. पंचवटी-प्रसंग,

अद्वैत वेदान्तियों के अनुसार आत्मा का बंधन अविद्या या अज्ञानवत होता है, अतः अज्ञान के दूर हो जाने पर मुक्ति प्राप्त हो जाती है। मुमुक्षु के लिए यही आवश्यक है कि वह अपने को समझने का प्रयत्न करे। आत्म-ज्ञान ही मुक्ति का साधन है। उपनिषदों में आत्मज्ञान या आत्मविद्या को सर्वश्रेष्ठ विद्या कहा गया है। मोक्ष प्राप्ति को वेदान्ती भ्रमनिवारण का ही एक रूप मानते हैं। वे बद्ध जीव की तुलना एक ऐसे व्यक्ति से करते हैं जिसने गले में हार पहन रखा हो, परन्तु वह भ्रम से उसे इधर-उधर ढूंढ़ रहा हो। भ्रम के दूर होते ही वह उसे अपने गले में ही मिल जाता है। इसी प्रकार आत्मा जो अपने ब्रह्मस्वरूप को विस्मृत कर देती है, ज्ञान प्राप्त होने पर अपने स्वरूप को पहचान लेती है। निराला ने इस दृष्टिकोण को निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकट किया है। अज्ञान के निवारित हो जाने से जीव को भ्रम-खेद से मुक्ति मिल जाती है। उसे दिव्यानुभव होता है—

'देखता है स्पष्ट तव,
उसके अहंकार मे समाया है जीव-जग;
होता है निश्चय ज्ञान—
व्यष्टि तो समष्टि से अभिन्न है;
देखता है, सृष्टि-स्थित-प्रलय का
कारण—कार्य भी है वही—
उसकी ही इच्छा है रचना-चातुर्य में
पालन संहार में।
अस्तु भाई, हैं वे सव प्रकृति के गुण
सच है, तव प्रकृति उसे सर्वशक्ति देती है—
अष्ट सिद्धियां वह
सर्वशक्तिमान होता,
इसे भी जब छोड़ता वह,
पार करता रेखा जव समष्टि-अहंकार की—
चढ़ता है सप्तम सोपान पर,
प्रलय तभी होता है,
मिलता वह अपने सच्चिदानंद रूप से।'[१]

इस प्रकार जीव के धर्म अहंकार के नष्ट तथा ज्ञान के प्राप्त होने पर ही आत्मा-परमात्मा की एकरूपता सम्भव है। निराला ने इस अवस्था को 'प्रलय' कहा है क्योंकि इस अवस्था में मन, बुद्धि तथा अहंकार सबका लय हो जाता है। मन के वृत्तिहीन कर देने को ही तो योग की भाषा में लय कहते हैं।

वेदान्तियों के अनुसार आत्मा की भेद-बुद्धि के निवारण की अवस्था ही मुक्ति नहीं है, वरन् मुक्ति तो आनन्द की अवस्था भी है। यही आनन्द ब्रह्मानन्द

१. पंचवटी-प्रसंग, परिमल, पृ० २५१

है। आत्मा तथा परमात्मा के तादात्म्य या मुक्ति की अवस्था का चित्रण निराला ने 'जागरण' की इन पंक्तियों में किया है—

'अविचल निज शांति में
क्लान्ति सब खो गई—
डूब गया अहंकार
अपने विस्तार में—
टूट गए सीमा-बन्ध—
छूट गया जड़-पिण्ड—
ग्रहण देश-काल का,
निर्बीज हुआ मैं—
पाया स्वरूप निज;
मुक्ति रूप से हुई,
नीड़स्थ पक्षी की
तम विभावरी गई—
विस्तृत अनन्त पथ
गगन का मुक्त हुआ;
मुक्त पंख उज्ज्वल प्रभात में,
ज्योतिमय चारों ओर
परिचय सब अपना ही।
स्थित मैं आनन्द में चिरकाल
जालमुक्त ! ज्ञानाम्बुधि।'[1]

जीव और ब्रह्म के इसी सम्बन्ध की मनोरम अभिव्यक्ति 'जुही की कली' की निम्नांकित पंक्तियों में हुई है। 'युवती' आत्मा का प्रतीक है और 'प्यारे' ब्रह्म का प्रतीक है। कवि ने दोनों के सम्बन्ध का रूपक इन शब्दों में बाँधा है—

'चौंक पड़ी युवती, निज चारों ओर
हेर प्यार को सेज पास
नम्रमुखी हंसी—खिली
खेल रंग, प्यारे संग।'[2]

'राम की शक्ति-पूजा', 'पंचवटी-प्रसंग' आदि कविताओं में निराला ने यौगिक प्रक्रियाओं का उल्लेख भी किया है। यह योग-दर्शन का प्रभाव है। 'राम की शक्ति-पूजा' में राम की साधना योग-शास्त्र के अनुरूप हुई है। हठयोग के अनुसार सुषुम्ना-मार्ग में अनेक चक्र होते हैं। प्रथम चक्र मूलाधार है जो सुषुम्ना के मल में स्थित है।

१. जागरण, परिमल, पृ० २६१
२. जुही की कली, परिमल, पृ० १६३

यह चतुर्दल कमल के आकार का है। दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र है जो लिंगमल है। यह षट्दल कमल के आकार का है। तीसरा चक्र मणिपुर है जो नाभिमल में स्थित है, यह दशदल कमल के आकार का है। चौथा चक्र हृदय चक्र या अनाहत चक्र है जो हृदय में स्थित है। वह द्वादशदल कमल के आकार का है। पाँचवां विशुद्ध चक्र कंठ स्थान में स्थित है जो षोडश कमलदल के आकार का है। छठा चक्र आज्ञा चक्र आज्ञा या आकाश चक्र है जो द्विदल कमल के आकार का है। वह भ्रूमध्य में स्थित है। इन षट्-चक्रों के अतिरिक्त ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रार चक्र है जो सहस्रदल कमल के आकार का है।[1]

प्रत्येक चक्र में एक-एक देवता की स्थिति स्वीकार की गई है। मूलाधार में ब्रह्मा, स्वधिष्ठान में विष्णु, मणिपुर में महारुद्र, हृदय में ईश्वर, विशुद्ध में सदाशिव, आज्ञा में शिव और सहस्रार में परमशिव का निवास माना जाता है। योगी का मन जब इड़ा, पिंगला को छोड़ 'सुषुम्ना-मार्ग' को पार करता हुआ सहस्रार तक पहुंचता है तब सिद्धि की प्राप्ति होती है। 'राम की शक्ति-पूजा' में राम का मन, एक के पश्चात् एक, क्रमशः सब चक्रों को पार करता हुआ, ऊर्ध्वगामी होता जाता है—

'चक्र से चक्र मन चढ़ता गया ऊर्ध्व निरलस।'[2]

छठे दिन राम का मन आज्ञा चक्र में समाहित होता है, त्रिकुटी पर ध्यान पहुंचकर द्विदल (देवी के द्विवल पद) पर केन्द्रित होता है—

चढ़ षष्ठ दिवस आज्ञा पर हुआ समाहित मन
प्रति जप से खिंच-खिंच होने लगा महाकर्षण;
संचित त्रिकुटी पर ध्यान द्विदल देवी-पद पर।[3]

अंत में ध्यानयुक्त मन ऊर्ध्वगामी होता हुआ ब्रह्मा—हरि—शंकर के स्तर (षट् चक्रों) का अतिक्रमण करता हुआ सहस्रार दुर्ग को पार करने को उद्यत हो जाता है। यही साधना की चरमावस्था है।

इसी प्रकार 'पंचवटी-प्रसंग' में भी कवि ने योग की प्रक्रिया का उल्लेख किया है। पातंजल योग दर्शन के अनुसार साधक प्रारम्भ में किसी स्थूल वस्तु (मूर्ति आदि) पर अपना ध्यान लगाता है। फिर क्रमशः ध्यान का विषय सूक्ष्मतर होता जाता है। अन्त में अस्मिता या अहंकार ही ध्यान का विषय रह जाता है। 'पंचवटी-प्रसंग' में राम लक्ष्मण से मुमुक्षु योगी के विषय में कहते हैं—

'योग सीखता है वह योगियों के साथ रह,
स्थूल से वह सूक्ष्म, सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो जाता;

---

१. देखिये—कबीर : एक विवेचन, पृ० ४६५-४६६

२. राम की शक्ति-पूजा, अनामिका, पृ० १६२

३. वही, पृ० १६२

मन, बुद्धि और अहंकार से है लड़ता जब
समर में दिन दूनी शक्ति उसे मिलती है।
क्रम-क्रम से देखता है
अपने ही भीतर वह
सूर्य-चन्द्र-ग्रह तारे
और अनगिनत ब्रह्माण्ड सारे।"[1]

योगी पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड की स्थिति मानते हैं। सूर्य, चन्द्र आदि सबकी स्थिति पिण्ड में ही है। इसी कारण कवि ने योगी द्वारा सूर्य-चन्द्र आदि का देखा जाना बतलाया है।

निराला के चिन्तन की अनेक धाराएँ होते हुए भी, दो ही प्रमुख हैं—जीवन-दर्शन तथा तत्व-दर्शन। तत्व-दर्शन की प्रमुख पीठिका अद्वैतवाद से निर्मित है। योग की झाँकियाँ भी उनके काव्य में सुलभ हैं; किन्तु कम। 'राम की शक्ति-पूजा' में योग और भक्ति के संपुटित रूप को प्रस्तुत करके कवि ने एक समन्वयात्मक दृष्टि-कोण का परिचय दिया है। निराला का अद्वैतवाद उनके काव्य की, उनके रहस्यवाद की धरा है और उस पर वे स्थान-स्थान पर विचरते दीखते हैं। कुछ लोग निराला को एक परिपाटी का कवि नहीं मानते, यह बात अंशतः ठीक है, किन्तु उनका दर्शन उनका साथ नहीं देता, यह बात ठीक नहीं है।

---

१. पंचवटी-प्रसंग, परिमल, पृ० २५१

: ५ :

निराला के काव्य का सांस्कृतिक धरातल

कवि निराला एक ऐसे वातावरण में पले थे जिसमें संस्कृति का गहन रंग था। उनकी शिक्षा-दीक्षा ने भी उनके मानस को साँस्कृतिक संदर्भो से अंकुरित कर दिया था। यद्यपि वे क्रांतिकारी कवि थे, युग और समाज के जागरूक दर्शक थे, उनके चारों ओर पश्चिम दिशा के प्रवाहित एक नवीन वातावरण छा रहा था; फिर भी उनका काव्य इस बात का प्रमाण है कि वे भारतीय संस्कृति के सजग प्रहरी थे। पाश्चात्य सभ्यता के प्रति उन्होंने अपनी आँखें बन्द नहीं कर ली थीं, परन्तु जो कुछ देखा उसे आत्मसात् करने के लिए देखा, भारतीयता में समीकृत करने के लिये देखा। उन्होंने नये वातावरण का उपयोग अपनी संस्कृति के विकास के हेतु ही किया था।

धर्म, दर्शन, समाज, कला, अलंकार और तो और छंद तक की परम्परा को साँस्कृतिक धारा की उर्मियों के रूप में ही चित्रित किया है। वे संस्कृति के कोरे गीत गाने वालों में से नहीं थे। उनका अन्तर उनके आचरण से संवद्ध था। उनके अद्वैतचिंतन ने उन्हें निर्द्वन्द्वता एवं निर्भीकता, उनकी धार्मिक भावनाओं ने हार्दिक कोमलता एवं उदारता, उनके भारतीय दृष्टिकोण ने वेशभूषा व शिष्टाचार, संस्कृत साहित्य के अध्ययन ने भाषा की प्रौढ़ता और उनके काव्यशास्त्रीय ज्ञान ने उनके काव्य को मुक्त मार्ग की प्रेरणा दी थी।

निराला परम्पराओं के पुजारी नहीं थे। विगलित परम्पराओं एवं रूढ़ियों के प्रति उन्हें तनिक भी आग्रह न था। सच तो यह है कि वे एक क्रांतिकारी कवि थे। उनकी क्राँति क्रांति के लिए नहीं थी, वह उपादेयता तथा उपयोगिता से प्रेरित थी। उनकी किसी भी कविता को देखने के लिए कोई न कोई नवीनता पाठक के सामने अवश्य आ जाती है, चाहे वह रूप की हो, शैली की हो अथवा विषय की हो। इसके उदाहरण 'तुलसीदास,' 'राम की शक्ति पूजा' आदि रचनाएँ ही नहीं है, अपितु 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'जागो फिर एक बार,' 'तोड़ती पत्थर', 'जुही की कली' आदि भी हैं।

विगलनकारिणी रूढ़ियां निराला को कदापि स्वीकार्य नहीं थीं। अपने साहित्यिक-आविर्भाव के साथ निराला ने केवल देश और समाज को ही आवद्ध नहीं पाया, वरन् कविता को भी। छन्द बन्धन में तड़प रहे थे और गीत प्राचीन अंधकार

में। प्राचीनता में बंधी उक्तियाँ भी आकर्षणविहीन हो गई थीं। शैली के सामने भी मार्ग नहीं था। ऐतिवृतिक आग्रह और शृंगारिक प्रतिक्रिया से काव्यलोक बुरी तरह आन्दोलित था। कवि प्रसाद ने रस की दुर्दशा के प्रति सहानुभूति अवश्य प्रकट की थी किन्तु निराला के सहयोग ने प्रसाद की क्रान्ति को प्रौढ़ एवं सफल बना दिया। जिस शृंगार में पिष्टपेषण की दुर्गन्ध आ गई थी और जो रीतिकालीन कवियों के हाथों में भेदीकरण एवं स्त्रैणता के दलदल में फँस गया था उसको प्रसाद ने उन्मुक्त एवं परमार्जित किया और निराला ने इसके अतिरिक्त उसे पौरुष भी प्रदान किया।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि निराला का शृंगार मृदुताहीन है, प्रत्युत उसमें वर्णन संयम अपने ही ढ़ंग का है। किसी भी प्रकार के शृंगार वर्णन में निराला मानसिक एवं शारीरिक दौर्बल्य से आक्रान्त नहीं हुए। सचेतता और अवधान के गुण ने उनके काव्य में शृंगारिक दुर्बलता को अभिव्यक्त नहीं होने दिया। इसका अभिप्राय यह भी नहीं है कि निराला का शृंगार परिमिति-मुक्त नहीं है। शृंगार के नग्नचित्र भी अश्लीलता की दुर्गन्ध से असंपृक्त हैं। इससे उनकी मानसिक तटस्थता तो परिलक्षित होती ही है, साथ ही हिन्दी कविता को यह तटस्थता की उनकी अद्‌भुत देन है जो उन्हें काव्य की भावधारा के ऊपर अपना व्यक्तित्व स्थिर रखने की क्षमता प्रदान करती है। महर्षि वाल्मीकि के शृंगार वर्णनों में इसी संयम और इसी तटस्थता की अभिव्यक्ति मिलती है। इससे स्पष्ट है कि इस भूमिका पर निराला के काव्य में प्राचीन साहित्यिक गौरव सुरक्षित मिलता है।

निराला खड़ी बोली गीत के आविष्कर्ता हैं। इससे पूर्व गीत की जो परम्परा भारतीय संस्कृति में सुरक्षित थी वह मूलतः प्रेम पर आधारित थी, जिसके दो स्वरूप थे—लौकिक एवं अलौकिक। अलौकिक प्रेम लोक गीतों में वह रहा था। प्रथम प्रकार के गीतों में कहीं-कहीं वैराग्य की भूमिका भी मिलती है, किन्तु वह भी अलौकिक प्रेम के मार्ग को ही निर्मित करती है। निराला के गीतों में प्रेम के दोनों स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं। लोक गीतों की जो परम्परा लोकजिह्वा पर आसीन रही थी। निराला ने उसे साहित्य के आसन पर भी बिठा दिया। रीतिकाल में लौकिक प्रेम नायक-नायिका की चेष्टाओं और अंग-प्रत्यंगों से लिपट गया उसे निराला ने भावों की सूक्ष्म भूमि पर भी प्रकट किया। रीतिकालीन कवियों को नायक-नायिका-भेद की प्रेरणा भले ही संस्कृत काव्यशास्त्र से मिली हो, किन्तु वह दरबारी विलासिता की गंध से मुक्त नहीं है। निराला ने अपने गीतों में जिस शृंगार का समावेश किया उससे उनके गीत नवीनता की दिशा अवश्य अभिव्यक्त करते हैं, किन्तु सांस्कृतिक धरातल का अभाव वहाँ भी नहीं है।

निराला के दार्शनिक आदर्शों ने न केवल उनके काव्य के प्राणों को प्रभावित किया है वरन् रूप एवं वेशभूषा को भी। उनके अद्वैतवाद ने उन्हें आध्यात्मिक और मानसिक स्वतंत्रता प्रदान की है। अतएव छंद की मुक्ति भी उनको अभिप्रेत है।

इसलिए वे कहते है—"जहाँ मुक्ति रहती है वहाँ बंधन नहीं रहते, न मनुष्यों में न कविता में मुक्ति का अर्थ ही है बंधन से छुटकारा पाना। यदि किसी प्रकार का शृंखलाबद्ध नियम किसी कविता में मिलता गया तो वह कविता किसी शृंखला से जकड़ी हुई होती है, अतएव हम उसे मुक्ति के लक्षण में नहीं ला सकते। मुक्त छंद तो वह है जो छंद की भूमि में रहकर भी स्वतंत्र है।" वस्तुतः छंद की गति, प्रवाह या लय ही इसे छंद की कोटि में ले पहुंचती है। इससे गद्य भी छंदत्व ग्रहण कर लेता है। मात्रा, गण या वर्ण की निर्बंधता ही छंद की मुक्ति है।

निराला के मुक्त छंद केवल रूप में ही क्रांति प्रकट नहीं करते अपितु भाव में भी क्रांतिसूचक हैं और वह क्रांति है प्रकृति में मानवीयता का आरोप-प्रकृति का मानवीकरण। इसी के सहयोग से निराला के काव्य में छायावाद प्रस्फुटित हुआ है। इसके अतिरिक्त वे प्रकृति के अणु-अणु में एक ही सत्ता का स्पंदन देखते हैं, वे प्रकृति के अनेक रूपों को एक ही सम्बन्ध में हैं, जिसमें समन्वयात्मक सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है। इससे कवि निराला के रहस्यवाद की भूमिका तैयार होती हैं। उनके छायावाद और रहस्यवाद पर भी उनकी दार्शनिकता का गहन प्रभाव है।

निराला का 'दार्शनिक छायावाद' विराट् सत्ता और शाश्वत ज्योति के रूप में व्यक्त हुआ है जिसे वे 'अमर विराम', 'माता', 'श्यामा' आदि पदों से व्यक्त करते हैं। 'यमुना' में उन्होंने उसे 'श्याम' और 'अतीत' नाम भी अभिहित किया है। यह 'शाश्वत ज्योति' निराला के छायावाद का एक विशिष्ट पहलू है। उसका दूसरा पहलू है उस शाश्वत ज्योति का इस जगत में सर्वत्र दर्शन। निराला के 'दार्शनिक छायावाद' में एक ज्योति के अनेक खंडचित्र ज्योतित दिखाये गये हैं। यही निराला का 'निर्वाह' है। निराला प्रत्येक दृश्य वस्तु का पर्यवसान एक ही अदृश्य अनंत में होता मानते हैं और तो और परिष्कार द्वारा वासना की परिणति भी निराला मुक्ति में मानते हैं। यह परिष्कार निराला के छायावाद की विशेपता है। निराला के अद्वैत दृष्टिकोण में यह जीव-जगत् मिथ्या है। उनकी इकाई 'शाश्वत ज्योति' है। इससे स्पष्ट है कि निराला के दार्शनिक, सामाजिक और कलात्मक विचारों के मूल में वही शाश्वत ज्योति है। इसी दृष्टिकोण पर निराला का छायावाद आधारित है। वह ज्योति वैदिक 'ज्योति' है, दार्शनिक 'ज्योति' है और सूफियों का 'नूर' भी वही है और यह निराला के दार्शनिक छायावाद की प्रौढ़ आधारशिला है।

कभी-कभी निराला के दार्शनिक छायावाद में रहस्यवाद की भ्रांति हो सकती है। सामान्यतया छायावाद और रहस्यवाद के दो भिन्न आधार होते हैं। छायावादी प्रकृति में मानवीय भावों की छाया देखता-दिखाता है और रहस्यवादी यत्र-तत्र-सर्वत्र एक अनंत सत्ता का साक्षात्कार करता-कराता है। दोनों की अभिव्यक्ति (और दर्शन का भी) माध्यम भावुकता है, किन्तु निराला प्रकृति में जिन मानवीय भावों को दृष्टिगोचर करते हैं उनके पीछे वे एक शाश्वत ज्योति की पृष्ठभूमि पाते हैं। इससे निराला का दार्शनिक छायावाद रहस्यवाद की परिधि का स्पर्श कर लेता है।

अनेक स्थानों पर निराला की रहस्यवादिता उनके दार्शनिक चिंतन से अनुरंजित दिखाई देती है और कई स्थान ऐसे भी हैं जहाँ उनकी रहस्यभावना दार्शनिकता के मार्ग से काव्य में प्रविष्ट हो जाती है। यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने की यह है कि अनेक स्थानों पर निराला की कृतियाँ कोरा दर्शन बन गई हैं। रहस्यवाद और दर्शन दोनों भिन्न वस्तुएँ हैं; इसमें कोई भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए। दार्शनिक जिस तत्व को चिंतन द्वारा उपलब्ध करता है कवि उसी को भावना द्वारा मूर्त्त रूप देता है। दर्शन भावना की धारा में बहकर काव्यगत रहस्यवाद का रूप धारण कर लेता है। निराला के काव्य का मूल्य केवल भावना और कल्पना से नहीं आँका जा सकता, इस मापदण्ड में चिंतन तत्त्व को भी मिलाना होगा। निराला का रहस्यवाद ही नहीं उनका दार्शनिक छायावाद भी चिंतन विशिष्ट काव्य है जो काव्य की नई दिशा में एक नया कदम है। नई सामग्री और नये उपकरणों से सम्पन्न उदार कला निराला की नई दिशा की अभिधा है जिसकी नये युग में बड़ी अपेक्षा है। इस दृष्टि से निराला ने दर्शन की प्राचीन भूमिका लेकर काव्य को नया वैभव प्रदान किया है। सांस्कृतिक पीठिका पर नये दृष्टिकोण से साहित्यिक विस्तार की योजना निराला की साहित्यिक मान्यताओं की विशेषता है।

निराला ने अपनी कृतियाँ प्रबन्ध और मुक्तक दोनों रूपों में तैयार की हैं। उनके प्रबन्ध-काव्यों में संस्कृति का अनुमोदन स्पष्ट है। 'राम की शक्ति पूजा' में उन्होंने संस्कृति के स्तंभों पर धार्मिक समन्वय की जो छत निर्मित की है उसकी छाया में बैठकर शैव, शक्ति और वैष्णव एक पारिवारिक भावना की प्रतीति सी करते हैं। यदि वे चाहते तो सामाजिक संकलन के लिए प्रेमचन्द की भाँति अनेक सामाजिक कथाओं को ले सकते थे, किन्तु वे तो धार्मिक ऐक्य की भूमिका पर साम्प्रदायिक भेदभाव को उन्मूलित करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त शक्ति की उपासना और रामकथा के पीछे जो सांस्कृतिक सूत्र संकलित किये गये हैं राम की शक्ति पूजा का अध्येता सांस्कृतिक गवेषणा के लिए उनकी उपेक्षा कदापि नहीं करता। श्रद्धा और विश्वास की जो नींव इस छोटे से खंड प्रबंध में डाली गई है उसमें भी सांस्कृतिक गौरव की झलक दिखलाई दे रही है।

'तुलसीदास' भारतीय नारी की प्रेरणाशक्ति का एक ज्वलंत उदाहरण है। रत्नावली ने ही वास्तव में रामचरित मानस के रचयिता का निर्माण किया जिसने भारतीय समाज को अपने समयके घोर अंधकार से निकालने के लिए प्रखर अन्तंज्योति प्रदान की। तुलसीदास के सांस्कृतिक महत्त्व को इतने उत्साह और इतनी स्पष्टता से सामने लाने में निराला की योग्यता को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

इसके साथ ही 'तुलसीदास' में मुगलकालीन भारतीय संस्कृति के ह्रास का जो मार्मिक चित्र अंकित हुआ है वह भी कवि के सांस्कृतिक अनुराग का व्यंजक है।

मानों सभ्यता और संस्कृति के उस ह्रास को देख संस्कृति के उस महान उपासक का हृदय क्रंदन कर उठा है।

निराला के प्रबंध ही नहीं मुक्तक भी संस्कृति की पीठिका पर आधारित हैं। वस्तुतः भारतीय सभ्यता व संस्कृति के प्रति कवि की आस्था कभी खंडित नहीं हुई है। इस दृष्टि से 'अणिमा' की 'सहस्राब्धि' कविता विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। इसमें कवि ने विक्रमादित्य के पश्चाद्कालीन सांस्कृतिक विकास का एक गौरवमय इतिहास प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त 'यमुना के प्रति', 'खंडहर के प्रति', 'दिल्ली' आदि कविताओं में भी प्राचीन भारतीय संस्कृति का आख्यान है साथ ही साथ ह्रासोन्मुखी संस्कृति के पुनरुद्धार का भी प्रयत्न निहित है। कहना न होगा कि निराला का प्रबन्धकाव्य हो या मुक्तक, दोनों की आधारशिला संस्कृति है।

'निराला की शैली को भी संस्कृति का अमोघ वरदान प्राप्त हुआ है। वे मुद्राएँ जो अधिकांश कवियों के साम्प्रदायिक भेद के आधार पर उनकी विशिष्टता का निर्माण करती हैं, जिन्हें पुष्ट करना उन (कवियों) का लक्ष्य बन जाता है, निराला का लक्ष्य नहीं है। उनके व्यक्तित्व की विशेपता है व्यापक जीवन-धारा के सौन्दर्य का विनिवेश और ओजमय सुकोमल सौहार्द। वह उनके काव्य में स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हो रहा है। काव्य में इन दोनों उपकरणों का सन्निवेश अत्यन्त विरल है, किन्तु निराला के काव्य की यह सहज शोभा है। कवि की दार्शनिक अभिरुचि जिसमें भारतीय संस्कृति की मधुर कान्ति है कविता की श्री-सम्पन्नता में प्रचुर योग देती है। गेय पदों की शाब्दिक मुघरता, विस्तृत आशय की संक्षिप्त अभिव्यक्ति, आकर्षक परिसमाप्ति एवं मधुर प्रकाश निराला के काव्य को भारतीय दर्शन से प्राप्त हुए हैं। सौन्दर्य की प्रतिमाएँ उन्होंने अपने वैयक्तिक अनुभव से संघटित की हैं। पूर्ण मानवोचित सहृदयता और तन्मयता के साथ उच्चकोटि का दार्शनिक अनुबंध, निराला के कवित्व की सांस्कृतिक विशेपताएँ हैं।

निराला प्रकृति के वैसे उपासक तो नहीं हैं जैसे पंत हैं, किन्तु प्रकृति के उपयोग की शैली उनके कवित्व की अपनी विशेपता है। स्थूल सौन्दर्य चित्रण एवं सामान्य भावनाओं को छोड़कर निराला ने सूक्ष्मता की ओर जाने के प्रयास में प्रकृति को सजीव एवं भाव-समृद्ध रूप में चित्रित किया है। निराला की कविता में प्रकृति-प्रेम का प्रकाशन प्रेम के प्रतीक रूप में और स्वतंत्र आलंबन-रूप दोनों में हुआ है। प्रकृति-चित्रण में गीति-भावना का समावेश अधिकांश कवियों में देखने को मिलता है, निराला उनमें से प्रमुख हैं।

निराला का प्रकृति-प्रेम दार्शनिक प्रेम की भूमिका पर खड़ा है। वे प्रकृति के माध्यम से एक अलौकिक सत्ता के दर्शन करते हैं। प्रकृति-निहित स्पन्दन, क्रिया कलाप, व्यापार आदि सभी में कवि के लिए संकेत और व्यंग्य भरे हैं। कवि की

प्रकृति सम्बन्धी उद्भावनाओं में मानव-भावनाओं की समानान्तर स्थिति दिखाई दे सकती है। गीतिका में ऐसे उदाहरण बहुत से मिल सकते हैं।[1]

यद्यपि निराला का काव्य पौरुष-प्रधान कहा जाता है, फिर भी उसमें अनूठे सौन्दर्य-चित्रों का सन्निवेश मिलता है। इससे निराला की सौन्दर्योपासना ही सिद्ध होती है। निराला के प्रकृति-चित्रण भी सांस्कृतिक परंपरा की रमणीयता के मूर्त रूप प्रस्तुत कर देते हैं। 'संध्या-सुन्दरी' का मनोहर वर्णन मानवी का वर्णन बन गया है—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्यासुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे,
तिमिराञ्चल में चञ्चलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर—

शेफाली के वासनामय सौन्दर्य में सजीव माधुर्य की झाँकी स्पष्ट है।

निराला के कुछ गीत प्रेमा-भक्ति की पराकाष्ठा के उदाहरण हैं। 'प्रिय यामिनी जागी' आदि पदों में इस युग के कवि के द्वारा भक्तों की श्री राधा की ही अवतारणा हुई है। निराला के मानवीय चित्रों में संभावनाओं के संयत और सजीव सौन्दर्य का आलेखन है। इनमें कोई रहस्य न होते हुए भी रहस्यवादी कवि का स्वर अवश्य सुनाई पड़ता है। इन गीतों में लौकिक की अवतारणा अलौकिक स्तर पर हुई है। इससे सिद्ध है कि निराला के इन गीतों में भी रहस्यवादी साहित्य साधना का ही विकास हुआ है। इसका प्रमुख कारण उनकी चिन्तन-परंपरा की भारतीय शैली है। उनके शृंगार-परक गीतों में भाव-माधुर्य के अतिरिक्त अनूठे आलंकारिक बंधन भी हैं जिनको देखकर माघ और वाण की शैली का स्मरण हो आता है।

निराला की भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली है जिस पर स्थान-स्थान पर संस्कृत का प्रभावातिशय भी परिलक्षित होता है। 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'तुलसीदास' में संस्कृत तत्समों की प्रधानता होने के साथ-साथ समास-बहुलता भी है। 'राम की शक्ति पूजा' को देखकर आठवीं शती के संस्कृत कवियों का स्मरण हो आता है। भारतीय वाङमय की अनेक शैलियों में से यह शैली भी एक प्रमुख स्थान रखती है।

भारतीय संस्कृति की एक विशेषता उसकी समीकरण शक्ति है। वह विदेशी प्रभावों को आत्मसात् कर लेती है। निराला की भाषा में संस्कृति की यह विशेषता

---

१. देखिये "वह चली, अब अलि, शिशिर समीर।

× × ×

व्यर्थ यह गई शिशिर यामिनी,
प्रिय के गृह की स्वाभिमानिनी,
नयनों में भी नीर।"

समय समय पर व्यक्त हुए विना नहीं रही है। 'जलती अंधकारमय जीवन की वह एक शमा है' में 'शमा' का प्रयोग उक्त शक्ति का उदाहरण है। निराला की भाषा का सांस्कृतिक वैभव उनकी मुहावरेदार भाषा में भली भाँती देखा जा सकता है। प्रसाद और शायद गुप्त जी की भाषा भी इतनी मुहावरेदार नहीं है। इससे भाषा को अभिव्यक्ति-वल प्राप्त हुआ है।

संक्षेप में यह कह देना अनुचित न होगा कि भाव और चिंतन, अभिव्यक्ति और शैली दोनों पक्षों में निराला का कवित्व सांस्कृतिक भूमिका पर प्रतिष्ठित है। प्रवन्ध काव्य हो, चाहे मुक्तक दोनों में उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि है। वे रहस्यवादी शैली में प्रकृति और मानव के पीछे एक 'ज्योति' को देखते हैं। यह अद्वैतिक ज्योति प्रकृति में मानवीय भावों के आधार के रूप में 'दार्शनिक छायावाद' की सृष्टि करती है। चिंतन और अध्ययन के द्वारा भारतीय संस्कृति से निराला का जो संबंध निर्मित हुआ है, उसी की पृष्ठभूमि पर निराला का कवित्व वैभववान् हुआ है। विषय की भूमिका में भी संस्कृति का आश्रय निराला की धारणा एवं निष्ठा का उज्ज्वल प्रमाण है।

: ६ :

निराला के काव्य का अभिव्यंजना-शिल्प

भाषा

अभिव्यक्ति की प्राणशक्ति का नाम भाषा है। भाषा के प्रयोग में कवि या लेखक का व्यक्तित्व अभिव्यक्ति पाता है। निराला का काव्य भी इसका अपवाद नहीं है। निराला का व्यक्तित्व जहाँ एक ओर संघर्षों का केन्द्र रहा है वहाँ वह दूसरी ओर निर्भीक भी रहा है। इससे निराला के काव्य की भाषा जटिल एवं व्यंग्यपूर्ण हो गई है। वैसे निराला का, भाषा के विषय में, कुछ ऐसा विचार था कि "प्रकृति की स्वाभाविक चाल से भाषा जिस तरफ भी जाय शक्ति-सामर्थ्य और मुक्ति की तरफ या सुखानुशयता, मृदुलता और छन्द-लालित्य की तरफ, यदि उसके साथ जातीय जीवन का भी सम्बन्ध है तो यह निश्चित रूप से कहा जायगा कि प्राणशक्ति उस भाषा में है।" उधर पंत ने पल्लव की भूमिका में भाषा सम्बन्धी जो विचार व्यक्त किए हैं वे भी निराला की भाषा की एक प्रवृत्ति की ओर संकेत कर देते हैं—भाषा संसार का नादमय चित्र है—ध्वनिमय स्वरूप है"[1] निराला का भाषा-विषयक विचार उनकी कृतियों में देखा जा सकता है। उनका विचार था कि "भाषा समयानुसार रूप बदलती है। कला के विकास के साथ-साथ साहित्य में नई भाषा भी विकसित होती है......भाषा की नियमबद्धता के वे विरोधी थे......भाषा के पैरों में व्याकरण की बेड़ी पड़ी कि झट उसने अपना स्वरूप बदला और पूर्णता की ओर किसी नये रास्ते से चल पड़ी.........संसार की हर एक भाषा स्वाधीन चाल से ही चलकर और भिन्न-भिन्न भाषाओं से ही शब्द लेकर अपना भंडार भरती है......भाषा किसी भाव को तभी स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त कर सकेगी जब वह भावों की सच्ची अनुगामिनी होगी।[2]

निराला भाषा के 'डिक्टेटर' थे। भाषा पर पूर्णाधिकार होने के कारण ही उन्होंने भावों के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है। यही कारण है कि उनके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती काव्य में विचारधारा के अंतर के साथ-साथ भाषा में भी पर्याप्त अन्तर

---

१. पल्लव, पृ० १५

२. चयन, पृ० १६, २१, २५

आ गया है। जहाँ उनके प्रारम्भिक काव्य की भाषा में गाम्भीर्य और जाटिल्य है परवर्ती काव्य की भाषा अधिक सरल और मुहावरेदार है।

निराला के काव्य में मुख्यतया तीन प्रकार की भाषाओं का प्रयोग मिलता है—

१. संस्कृत तत्सम शब्द प्रधान भाषा
२. साधारण बोलचाल की भाषा
३. उर्दू-फारसी मिश्रित भाषा

प्रथम प्रकार की भाषा निराला के परवर्ती काव्य (परिमल, अनामिका, गीतिका, तुलसीदास आदि) की भाषा है। तत्सम-प्रधान भाषा के भी दो रूप मिलते है। प्रथम रूप तो वह है जहां तत्सम प्रधान समस्त-पदावली प्रयुक्त हुई है। 'राम की शक्ति-पूजा' में समासमयी पदावली का ही प्रयोग हुआ है। समस्त पदों से युक्त भाषा का एक उदाहरण देखिए—

"रावण-लाघव-रावण-वारण-गत-युग्म-प्रहर,
उद्धत-लंकापति-मर्दित-कपि-दल-बन विस्तर,
अनिमेष-राम-विश्वजि द्दिव्य-शर-भंग-भाव,
विद्धांग-वद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रुधिर-स्राव,
रावण-प्रहार-दुवार-विकल-वानर-दल-बल,
मूर्च्छित-सुग्रीवांगद-भीषण-गवाक्ष-नय-नल,"[1]

निराला की यह पदावली कादम्बरीकार का स्मरण दिला देती है, जिसके समासयुक्त पद अनेक पृष्ठों तक चले जाते हैं। दूसरा रूप वह है जहाँ संस्कृत तत्सम शब्द भाषा के प्रवाह में स्वाभाविक रूप से ही आगये हैं। 'परिमल', 'अनामिका', 'तुलसीदास' आदि की अधिकांश कविताओं की भाषा संस्कृतबहुल है। परवर्ती काव्य की अनेक रचनाओं में भी कवि संस्कृत शब्दों के प्रयोग का लोभ संवरण नहीं कर पाया है।

यद्यपि 'अनामिका' और 'परिमल' की 'खुला आसमान' तथा 'भिक्षुक जैसी कविताओं की भाषा बहुत-कुछ बोल-चाल की ही है तथापि 'कुकुरमुत्ता' 'अणिमा,' 'बेला,' 'नये पत्ते' आदि परवर्ती रचनाओं में ही मुख्य रूप से साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग मिलता है। इनमें बोलचाल के प्रचलित मुहावरों, लोकोक्तियों और देशज शब्दों का प्रयोग हुआ है। इनके परवर्ती काव्य की भाषा गद्यात्मक अधिक है। नीचे लिखे उदाहरण से इस उक्ति की पुष्टि हो सकती है—

"बीनती है, काड़ती है, कूटती है, पीसती है,
डलियों के सीले अपने रूखे हाथों पीसती है,
घर बुहारती है, करकट फेंकती है,
और घड़ों भरती है पानी,"[2]

---

१. राम की शक्ति पूजा, अनामिका, पृ० १४८
२. नये पत्ते, रानी और कानी, पृ० ९

तृतीय प्रकार की भाषा उर्दू-प्रधान है। निराला के काव्य में दीवान आम, जहान, हक़, रंजोगम, कलेजा, नज़र, तूफान, शराबोर, फ़ुर्सत, दिल, प्याला, फ़तहयाब, काफ़िर, बरबाद, तदबीर, दगाबाज़, रंगोआब, ख्वाब, नबुली, तहज़ीब, खुशनुमां, सुर्ख, ज़र्द, शमा आदि अनेक उर्दू शब्द मिलते हैं। 'कुकुरमुत्ता' और 'नये-पत्ते' में उर्दू शब्दों का बाहुल्य है। 'बेला' में तो निराला ने उर्दू गज़ल शैली की कविताएँ लिखी हैं। इनकी भाषा भी उर्दू है, जिसमें अनेक उर्दू-मुहावरों का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार की कविता के नमूने देखिये—

"निगह तुम्हारी थी, दिल जिससे बेकरार हुआ;
मगर मैं ग़ैर से मिलकर निगह के पार हुआ।"[1]

इसी प्रकार—

"बदली जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया।
गुल जैसे चमचमाया कि बुलबुल मसल गया।
यह टहनी से हवा की छेड़-छाड़ थीं, मगर,
खिलकर सुगन्ध से किसी का दिल बहल गया।"[2]

लेकिन इन गज़लों में निराला उर्दू-कवियों का सा कमाल हासिल नहीं कर पाये हैं। ये तो भाषा के क्षेत्र में उनके प्रयोगमात्र हैं। इन गज़लों में उर्दू के बीच-बीच में हिन्दी और संस्कृत शब्दों के प्रयोग अटपटे लगते हैं। इसी कारण 'बेला' की अधिकांश गजलों बहरों में न तो उर्दू बहरों की 'तर्ज़' का निर्वाह हो पाया है और न उनकी सी लज्ज़त आई है।

निराला ने अनेक बहुप्रचलित अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। डिग्री, ग्रेड, लॉर्ड, आफिस, ऐन्ट्रेन्स, फ्लट विवट, कैमरा, प्रोग्रेसिव, क्लाइमेक्स, प्रोलेटेरिइन आदि अनेक अंग्रेजी, शब्द निराला की रचनाओं में मिलते हैं। 'कुकुरमुत्ता' में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग देखिये—

"जैसे सिकुड़न और साड़ी,
ज्यों सफाई और मांडी;
कास्मोपालिटन व मेट्रोपालिटन
जैसे हों फ्रायड, लिटन,
....
सरसता में जैसे फाड
कैपिटल में लेनिनग्राड।"[3]

इसी प्रकार 'परिमल' की 'जलद के प्रति' कविता में द, ग्रेड, डिगरी शब्दों का प्रयोग सुन्दरता से हुआ है—

१. बेला, पृ० २९
२. वही, पृ० ८३
३. कुकुरमुत्ता पृ० ८

'द' जोड़ ग्रेड बढ़ाया, तुम पर
जाल फूट का फैलाया,
'जल' से 'जलद' कहा समझाया,
भेद तुझे ऊंचे बैठाल;
....

धन्य तुम्हारे भक्ति-भाव को
दुःख सहे डिगरी खोई ।'[1]

'निराला' के काव्य में ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग अधिकता से हुआ है। स्वच्छन्दतावाद के द्वितीय चरण में कवियों की यह एक मुख्य प्रवृत्ति रही थी।'[2] कलरव, कलकल, छलछल, टलमल, तिरतिर, डगमग, छनछन, हिल्लोल, मरोर मर्मर, गुंजन, थरथर, झरझर, रुनझुन, घर-घर, कुलकुल, फुरफुर, झूम-झूम, गरज-गरज, खल खल, हिल हिल, खिलखिल, झकझोर, धक्धक, मन्थर, लकलक आदि अनेक ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग बहुलता से मिलता है।

निराला ने कहीं-कहीं इच्छानुकूल शब्दों की सृष्टि भी की है। निम्नलिखित पंक्तियों में 'भ्रम में पडे लोगों' के लिए 'भ्रमर' शब्द का प्रयोग देखिये—

'अविनश्वर वही ज्ञान भीतर,
बाहर भ्रम, भ्रमरों को, भास्वर।'[3]

निराला की भाषा में लाक्षणिक प्रयोग बहुत कम मिलते हैं। उनका ध्यान कला के प्रदर्शन की ओर कम ही गया है। उनकी भाषा में क्रियाओं एवं विभक्तियों के अभाव से कुछ अस्पष्टता आ गई है। इससे कवि के अभिप्रेत आशय को समझने में कुछ कठिनाई होती है। जैसे गीतिका की निम्न पंक्तियों का अर्थ बहुत ही अस्पष्ट है—

'कौन तम के पार (रे कह)
अखिल पल के स्रोत जल जग
गगन घन घन-धार (रे कह)
गन्ध व्याकुल कूल उर सर

---

१. परिमल—जलद के प्रति, पृ० ८३
२. "इसका (स्वच्छंदतावाद के द्वितीय चरण का) वास्तविक प्रारम्भ १९१८ से मानना चाहिए जब से 'प्रसाद', 'सुमित्रानन्दन पंत' और 'निराला' की नवीन शैली की कविताओं का प्रकाशन होता है।" पृ० ३७
"इस द्वितीय चरण में कवि भाषा के सीधे-सादे शब्दों का बहिष्कार-सा करने लगे। शीघ्र ही एक समृद्ध भाषा-शैली का विकास होने लगा जिसमें संस्कृत तत्सम तथा ध्वनि-व्यंजना शब्दों की अधिकता थी।" पृ० ४१
श्रीकृष्णलाल—आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास।
३. तुलसीदास, पृ० ३५

लहर कच कर कमल मुख पर
हर्ष अति हर स्पर्श शर, सर
गूंज बारम्बार (रे कह) ।"[1]

निराला की एक भाषागत प्रवृत्ति यह है कि वे किसी भी भाव को संक्षेप में व्यक्त करना चाहते हैं। उनके लम्बे-लम्बे समास और सन्धियुक्तपद उनकी इसी प्रवृत्ति के परिचायक हैं। निराला के काव्य में सन्धियुक्त शब्दों का प्रयोगाधिक्य है जैसे—जगज्जीवनमृत, सागराभिमुखऽपार, विद्याध्ययनान्तर, वक्षःस्थलार्गलित, स्वप्न-संस्कारागर, शतशैलसंवरणशील, प्रियकरालम्ब, तमजिज्जीवन, करुणांचल, कण्टका-कीर्ण, कल्पपोत्सार, तलाश्रित आदि।

भाषा में गरिमा भरने और उसे जनसामान्य के निकट लाने में मुहावरों का विशेष योग होता है। मुहावरे जहां अभिव्यक्ति को सशक्त बनाते हैं वहां स्पष्ट और प्रभावोत्पादक भी। निराला की भाषा में भी अभिव्यक्ति की 'सुघराई', स्पष्टता और प्रभावोत्पादकता के निमित मुहावरों को प्रश्रय दिया गया है। निराला ने मुहावरों का प्रयोग यथास्थान कुशलता से किया है। उनके परवर्ती काव्य में विशेष रूप से 'नये पत्ते' में मुहावरों का प्रयोग अधिकता से मिलता है। अनामिका, परिमल आदि पूर्ववर्ती रचनाओं में भी कतिपय स्थानों पर मुहावरों का प्रयोग हुआ है। मुहावरों के कुछ उदाहरण देखिये—

ठगा सा रह जाना—'भग में ठगी-सी रह गई'[2]
दिन गिनना—'उंगली के पोरों में दिन गिनता ही जाऊं क्या मां'[3]
मुंह काला करना—'काला कर देगी मुख'[4]
दाल गलना—'दाल है गली नहीं'[5]
फूलों की सेज पर सोना—'फूलों की सेज पर सोये हो'[6]
लोहा लेना—'लोहा लो अपने ही भाइयों से'[7]
हाथ मलना—'दूसरे भी मलते हैं हाथ'[8]
ईंट का जवाब पत्थर से देना—'ईंट का जवाब हमें पत्थर से देना है'[9]
आस्तीन का सांप—'सांप आस्तीन का'[10]

---

१. गीतिका, गीत १२
२. परिमल—शेष, पृ० ४०
३. वही, 'आवाहन', पृ० १५०
४. वही—महाराज शिवाजी का पत्र, पृ० २१८
५. वही— ,, ,, ,, ,, पृ० २२१
६. वही— ,, ,, ,, ,, पृ० २२३
७. वही— ,, ,, ,, ,, पृ० २२४
८. वही— ,, ,, ,, ,, पृ० २२७
९. वही— ,, ,, ,, ,, पृ० २३१
१०. वही— ,, ,, ,, ,, पृ० २३२

सिर पर पैर रखकर भागना—'हाथ जिसके तू लगा पैर सर पर रखकर
वह पीछे को भागा'[1]

इनके अतिरिक्त आँसू बहाना, नजर बचाना, कौड़ी मोल बिकना, पीछे पैर रखना, आँख लगना आदि अनेक मुहावरे निराला के काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। ये मुहावरे काव्य की अभिव्यक्ति को सप्राण बना रहे हैं और साथ ही भावाभिव्यक्ति को स्पष्ट और प्रभावोत्पादक भी।

निराला की भाषा संबंधी एक विशेषता उनकी सार्थक शब्द योजना भी है। वस्तुतः उपयुक्त शब्दों के प्रयोग से ही कवि की अभिव्यक्ति में कुशलता एवं प्रेषणीयता आती है। इस विषय में निराला का स्वयं का कथन है—'एक ही शब्द के पर्यायवाची अनेक शब्द होते हैं। उनमें किस शब्द का प्रयोग उचित होगा, किस शब्द में कविता में भाव की व्यंजना अधिक होगी, इसका ध्यान कवियों को रखना पड़ता है—भाव के वाहक शब्द होते हैं और शब्दों के अर्थ और ध्वनि।'[2] निराला की शब्द योजना बहुत ही सार्थक थी। इस प्रसंग में डॉ० धनंजय वर्मा[3] ने निराला काव्य से दो उद्धरण दिये हैं—

'पर, क्या है
सब माया है—माया है
मुक्त हो सदा ही तुम।'[4]
तथा—
'करना होगा यह तिमिर पार—
देखना सत्य का मिहिर द्वार।'[5]

इन दोनों उद्धरणों में माया के साथ मुक्त और तिमिर के साथ मिहिर शब्द का प्रयोग अत्यन्त सार्थक है। इसी प्रकार उनके प्रसिद्ध शोकगीत 'सरोज स्मृति' में निराला के स्वयं के लिए प्रयुक्त 'निरर्थक' शब्द का प्रयोग नितान्त सार्थक है—

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका।[6]

वस्तुतः निराला आर्थिक दृष्टि से भी निरर्थक (अर्थहीन) थे और अपनी पुत्री के लिए कुछ न कर सके, इसलिए भी वे निरर्थक थे। इस प्रकार के सार्थक शब्द ही भाषा के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हैं।

---

१. कुकुरमुत्ता, पृ० ३
२. रवीन्द्र-कविता-कानन—निराला, पृ० ११८
३. निराला : काव्य और व्यक्तित्व, पृ० २१२
४. परिमल—जागो फिर एक बार, पृ० २०४
५. तुलसीदास, पृ० २८
६. अनामिका, पृ० १८

निराला भावों के अनुकूल चुन-चुनकर इस प्रकार के शब्दों की योजना करते हैं ... जो पढ़कर सम्पूर्ण वातावरण का एक ध्वनिचित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। शब्द स्वयं बोलते हुए प्रतीत होते हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' का प्रारम्भिक पंक्तियाँ युद्धकालीन वातावरण का एक सजीव चित्र प्रस्तुत करती हैं, भावों के अनुरूप ही कठोर वर्णों की योजना कवि ने की है—

'आज का, तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर, वेग-प्रखर,
शतशेलसम्वरणशील, नीलम-गर्जित-स्वर,
प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह-भेद कौशल-समूह,—
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह,—क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,'[1]

इसी प्रकार नायिका की रति-चेष्टाओं का एक चित्र निम्नलिखित पंक्तियाँ अंकित करती हैं—

'चुम्बन-चकित चतुर्दिक चंचल
हेर, फेर मुख, कर बहु सुख-छल,
कभी हास, फिर त्रास, सांस—वन
उर सरिता उमगी।'[2]

'जुही की कली' में शिथिल होकर सोई हुई कोमलतनु तरुणी तथा उपवन, सरिताओं आदि को पार कर तीव्र गति से आने वाले नायक का एक शब्द-चित्र कवि ने खींच दिया है। नायक की गति का एक शब्द दृश्य देखिये—

उपवन-सर सरित् गहन-गिरि-कानन
कुंज लता पुंजों को पारकर
पहुंचा जहां उनने की केलि
कली-खिली-साथ।[3]

ऐसा लगता है नायक के साथ-साथ शब्द भी भागे जा रहे हैं। इस प्रकार 'अत्यन्त सार्थक शब्द सृष्टि द्वारा निरालाजी ने हिन्दी को अभिव्यक्ति की विशेष शक्ति प्रदान की है। शब्द संगीत परखने और व्यवहारों में लाने में वे आधुनिक हिन्दी के दिशा नायक हैं।'[4]

निराला एक अन्यतम शिल्पी हैं। जहां इनका शब्द चयन सुन्दर, विविध भाषाओं के शब्दों का प्रयोग सार्थक और आवश्यक, भावानुगामी है वहां इनकी कविताओं में चित्रात्मकता भी वर्तमान है। निराला ने चित्र या बिम्ब के चयन में कहीं तो प्रकृति को और कहीं समाज को अपना आधार बनाया है! इनकी कविता में वस्तु चित्र भी पूर्ण रूपेण देखने को मिलते हैं। यद्यपि यह ठीक है कि छायावादा

---

१. राम की शक्ति-पूजा—अनामिका, पृ० १४८
२. गीतिका—गीत २८, पृ० ३३
३. परिमल—जुही की कली, पृ० १६२
४. नन्ददुलारे वाजपेयी—बीसवीं शताब्दी, पृ० १४१

कविता में यथार्थ के प्रति आग्रह कम है और इसी कारण वस्तु के चित्रों की है पर निराला न तो पूर्णतः छायावादी हैं और न पूर्णतः प्रगतिवादी। इसलिए वस्तु चित्रों को केवल निराला के ही काव्य में देखा जा सकता है—

वह तोड़ती पत्थर
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर
नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन भर बंधा यौवन
नत नयन प्रिय कर्म रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार
सामने तरु-मालिका अट्टालिका प्राकार।[1]

यह वस्तु चित्र है जो बड़ा सफल है। इस चित्र में स्थिरता है साथ ही मानवीय संवेदना का बड़ा व्यापक और गहन मूर्ति-विधान इन पंक्तियों में हुआ है। निराला की कुछ कविताओं में 'कलासिक' कविता के तत्व भी विद्यमान है जैसे—'राम की शक्ति पूजा', 'अपरा' की 'सन्ध्यासुन्दरी' कविताओं में। इन्हीं कविताओं में प्रकृति क्षेत्र से जहाँ चित्रों को चुना गया है वहां कुछ विवृत चित्र भी देखने को मिलते हैं। 'संध्यासुन्दरी' में एक ऐसा ही चित्र शब्दों के माध्यम से कवि ने खड़ा कर दिया है—

'दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही
वह संध्यासुंदरी परी सी
धीरे-धीरे धीरे,
तिमिरांचल में चंचलता का कहीं नहीं आभास
मधुर मधुर है दोनों उसके अधर—
किन्तु जरा गम्भीर, नहीं है उसमें हास-विलास,
हंसता है तो केवल तारा एक
गुथा हुआ उन घुंघराले काले बालों से
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक
....[2]

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि निराला की भाषा प्रौढ़, अभिव्यक्ति कुशल और चित्रात्मकता संजीव है। उनकी कविताओं में भावानुकूल समास

१. अपरा—वह तोड़ती पत्थर,
२. 'संध्यासुन्दरी' कविता,

गुंफित शब्दावली और दूसरी ओर बोलचाल की साधारण भाषा। व्यंग्यात्मक शैली ने मिलकर जहाँ भाषा को स्वाभाविकता प्रदान की है वहां कुछ ऐसे स्थल भी हैं जहां वह अन्य स्थलों की अपेक्षा दुरूह, अस्पष्ट हो गई है ऐसा उन्हीं स्थलों पर हुआ है जहां भाषा ने भावों के साथ खेलना बन्द कर शब्दों के साथ खेलना प्रारम्भ कर दिया है।

इस विवेचन के आधार पर भाषा और शैली के सम्बन्ध में हमें निराला के सिद्धान्तों की अवगति भी हो जाती है। हम संक्षेप में उनको इस प्रकार रख सकते हैं—

(१) भाषा और स्वाभाविकता का सम्बन्ध सुरक्षित रहना चाहिए।

(२) स्वाभाविक भाषा क्लिष्ट भी हो सकती है और क्लिष्ट भाषा भी स्वाभाविक हो सकती है।

(३) भाषा प्रसंग और अवसर की उपेक्षा न करे।

(४) भाषा सदैव व्याकरण की दासी न रहे।

(५) अन्य भाषाओं के चालू शब्द और प्रयोग अछूत न समझे जायें।

(६) भाषाभिव्यक्ति के समय भाषा पर छंद और अलंकार का कोई प्रतिबंध न लगाया जाये। भावानुगामिनी भाषा ही शक्ति और प्रभाव के साथ अवतरित होती है।

निराला ने कविता में इन सिद्धान्तों का यथोचित अनुपालन किया है। उनकी परवर्ती रचनाओं में प्रसंगानुकूलता के साथ-साथ भाषा की सरलता की रक्षा भी हुई है। 'अणिमा', 'बेला' तथा 'नये पत्ते' की भाषा जनसामान्य की भाषा है। 'परिमल' 'अनामिका' और 'गीतिका' में उर्दू-फारसी के शब्दों का भी अभाव नहीं है। कुकुरमुत्ता में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग खुल कर हुआ है। 'राम की शक्ति-पूजा' तथा 'तुलसीदास' में संस्कृत की समासप्रधान शब्दावली प्रसंग की प्रेरणा प्राप्त किये हुए हैं।

छन्द-योजना

आर्य भाषा विकास क्रम में जिस प्रत्येक भाषा की अपनी विशेषता है, उसी प्रकार प्रत्येक का कोई विशेष छन्द भी रहा है। संस्कृत का प्रिय छन्द अनुष्टुप, पाली का प्रिय छन्द गाथा (अन्य प्राकृतों ने प्रिय गाथा को ही अपनाया) अपभ्रंश का प्रिय छन्द दोहा, ब्रजभाषा का प्रिय छन्द बरवै तथा दोहा रहा है। प्रश्न यह है कि क्या खड़ी बोली ने भी कोई विशेष छन्द अपनाया है? क्या हरिगीतिका खड़ी बोली का प्रिय छन्द है? यदि मैथिलीशरण गुप्त ने हरिगीतिका को प्रोत्साहित किया था तो क्या अन्य कवियों ने भी उसको उसी उत्साह से अपनाया है और क्या सभी कवि उसके प्रति उत्साही हैं?

वस्तुतः खड़ी बोली का कोई प्रिय छन्द नहीं है। यदि होता तो दोहा-चौपाई या कवित्त की भांति सामने आ जाता। सचमुच यह एक विडम्बना है कि खड़ी बोली राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होकर भी अभी तक किसी छन्द विशेष को न अपना पाई। प्रजातन्त्र के इस युग में किसी एक छन्द को प्रामुख्य मिल जाये, यह बात अन्य छन्दों को सहन कैसे हो सकती है। आज का कवि किसी न किसी राजनीतिक वाद की उलझन में अवश्य पड़ा हुआ है। यदि वह प्रजातन्त्रवादी नहीं है तो साम्यवादी तो अवश्य होता। निर्दलीय कवियों को न तो यह युग पसंद करता है और न वे ही युग को पसन्द करते हैं। उन्हें जीने की चाह है इसलिए वे अपने 'जैसे-तैसे' समाज में 'जिस-तिस' भाँति जीवित हैं।

चाहे व्यवहार में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श का प्रतिपालन हो रहा हो, किन्तु प्रदर्शन ऐसा अवश्य किया जा रहा है। आज के अनेक साहित्यकार इस प्रदर्शन के शिकार हैं, किन्तु कुछ साहित्यकार आज भी ऐसे मिल सकते हैं जो 'सबै भूमि गोपाल की,जा में अटक कहा' के सिद्धांत को व्यवहार में उतार रहे हैं। वे परम्पराओं के प्रति घृणाभाव नहीं रखते किन्तु परम्पराएं उनके मौलिक उत्साह को बाधित नहीं कर सकतीं। मौलिकता उनके जीवन का स्वर है, उनके प्राणों की भूमि है। प्रसाद और निराला हिन्दी साहित्य गगन के ऐसे ही चमकते नक्षत्रों में से हैं, जो प्रकाश लेने में हिचकिचाते नहीं हैं और मौलिक प्रकाश देने में भी कृपणता नहीं करते। जिस प्रसाद ने परम्परा की छाया में कविता का श्रीगणेश किया था उसी ने कामायनी जैसे प्रबन्धकाव्य को मौलिक परिपार्श्व, मौलिक भूमिका और मौलिक रंगरूप में प्रस्तुत किया। निराला भी मौलिक रूप से ही काव्य-प्रदेश में निराला आलोक विकीर्ण करते बढ़ते चले गये। निराला को यह चिन्ता न थी कि उनकी दो कृतियों में समानता बनी रहे, उनको चिन्ता न थी कि उनकी दो रचनाएं एक लय में ही उतरें, किन्तु उनको यह चिन्ता थी कि किसी भी प्रकार उनकी मौलिकता, उनका निरालापन बाधित न हो। सच तो यह है कि निराला के व्यक्तित्व में जो साहस, उनकी कृतियों में जो उत्साह, उनकी अभिव्यक्ति में जो दुर्दमता और भाषा में जो प्रौढ़ता थी वैसी शक्ति उनके छन्दों में भी है।

आधुनिक छायावादी काल छन्द वैविध्य की दृष्टि से सुसंपन्न रहा है। परंपरागत छन्दों के प्रयोग के साथ-साथ अनेक नवीन छन्दों का निर्माण भी इस काल में हुआ। छायावादी कवियों को मात्रिक छन्द ही विशेष रूप से प्रिय रहे हैं। मात्रिक छन्द खड़ी बोली के लिए बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुए है। निराला ने भी मुख्य रूप से मात्रिक छन्दों को ही अपनाया है। छन्द विषयक अनेक प्रयोग निराला के काव्य में मिलते हैं। अनेक परम्परागत छन्दों को तोड़-मरोड़कर तथा कहीं-कहीं दो या अधिक छन्दों को जोड़कर निराला ने नवीन छन्द बनाये है। निराला के छन्दों को स्थूल रूप से तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) सम, (२) अर्द्धसम तथा (३) विषम।

१. सम छन्द

इन छन्दों में चरणों में मात्राओं की संख्या सम रहती है। निराला ने इनमें कहीं-कहीं सुविधानुसार कुछ परिवर्तन भी कर दिया है। निराला काव्य से उद्धृत सम छन्दों के कुछ उदाहरण देखिये—

१. मूंदी जब जग ने आँखें
खोली री इसने पाँखें;
उड़ने को नभ को ताकें
उपवन की परियाँ आली।[1]

२. फैली दिङ् मंडल में चांदनी,
बंधी ज्योति जितनी थी बांधनी,
करती है स्तवन मंद पवन से
गन्ध-कुसुम कलिकाएं भवन से।[2]

गीतिका की अधिकांश कविताओं में सम छन्द ही प्रयुक्त हुए हैं।

२. अर्द्धसम छन्द

आचार्य केदारभट्ट और आचार्य गंगादास के अनुसार जिस छन्द का प्रथम तथा द्वितीय, द्वितीय तथा चतुर्थ चरण समान हो, वह अर्द्धसम होता है। छायावादी कवियों ने अर्द्धसम छन्दों का बहुत प्रयोग किया है। उन्होंने प्राचीन लम्बे-लम्बे छन्दों (जिनके मध्य यति आती है) के यति के पूर्वार्द्ध को प्रथम चरण और यति के पश्चार्द्ध को द्वितीय चरण के रूप में रखा है। निराला ने ही सर्वप्रथम अर्द्धसम मात्रिक और अक्षर मात्रिक मुक्त छन्दों का प्रयोग प्रारम्भ किया। रोला छन्द का एक अर्द्धसम रूप देखिए जिसमें १६ और ८ मात्राओं के यतियुक्त चरण को दो चरणों के रूप में उपस्थित किया गया है—

नयन मुदेंगे जब, क्या देंगे, १६
चिर प्रिय-दर्शन ? ८
सत सहस्र जीवन पुलकित प्लुत— १६
प्यालाकर्षण[3] ८

इसी प्रकार कुण्डल छन्द का एक अर्द्धसम के रूप में प्रयोग देखिए:—

जननि जनक जननि जननि ६, ६
जन्म भूमि भाषे ६, ४
जागो नव अम्बर भर ६, ६

---

१. गीतिका, पृ० ६५
२. अणिमा, पृ० १०६
३. परिमल—परलोक, पृ० ६३

ज्योति स्तर वासे ?[१] ६, ४

३. विषम छंद

विषम छंदों में निराला का मुक्त छन्द विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिन्दी में भिन्नतुकान्त छंदों (Blank Verse) का प्रारम्भ तो जयशंकर प्रसाद से ही हो चुका था।

पश्चात् पंडित रूपनारायण पाण्डेय, बाबू मैथलीशरण गुप्त, कहाकवि हरिऔध, सियारामशरण गुप्त और सुमित्रानन्दन पन्त आदि ने भी भिन्नतुकान्त वृत्तों में काव्य-रचना की; परन्तु ये छन्द भिन्न तुकान्त होते हुए भी नियमों और सीमाओं में आवद्ध थे। मात्रिक, वर्णिक एवं गणवृत क्रमशः मात्रा, वर्ण और गणों की सीमाओं में आवद्ध थे। कुछ लोगों ने इन्हें ही मुक्त-छन्द समझने की भूल की है; परन्तु ये छन्द मुक्त-छन्द कदापि नहीं हैं। मुक्त छन्दों का वास्तविक प्रारम्भ ता महाकवि निराला से होता है। हिन्दी साहित्य को यह उनकी महान शैलीगत देन है। प्रारम्भ में तो निराला के मुक्त छंदों का 'रबर छंद', 'केंचुआ छंद', 'कँगारू छंद' आदि नामों से उपहास किया गया, पर बाद में अनेक प्रतिभावान् साहित्यकारों ने इस छंद का अनुकरण भी किया। निराला कविता कामिनी को छंदों के संकीर्ण बन्धन से मुक्त करने के पक्ष में थे। 'परिमल' में उन्होंने लिखा है:—

> आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
> अर्ध विकच इस हृदय-कमल में आ तू
> प्रिये छोड़ कर वन्धनमय छन्दों की छोटी राह
> गजगामिनी, वह पथ तेरा संकीर्ण, कण्टकाकीर्ण
> कैसे होगी उससे पार।[२]

वस्तुतः निराला को अलंकार के भार से अनाक्रांत एवं छंद के पाश से अनावद्ध कविता वनिता का नैसर्गिक सौन्दर्य ही विशेष प्रिय था। उनकी यह धारणा थी कि मुक्त छंद के माध्यम से ही सहज व अकृत्रिम भावाभिव्यक्ति सम्भव है। जैसा कि 'परिमल' की 'जागरण' कविता से स्पष्ट है—

> अलंकार लेश रहित श्लेषहीन,
> शून्य विशेषणों से······।
> नग्न नीलिमा सी व्यक्त,
> भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी—
> मुक्त छन्द सहज प्रकाश वह मन का।
> निज भावों का प्रकट अकृत्रिम चित्र।

निराला ने मुक्त छन्द पर विस्तार से विचार करते हुए परिमल की भूमिका

१. गीतिका, पृ० ८३
२. अनामिका, प्रगल्भ प्रेम, पृ० ३४

में लिखा है 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना।......मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, किन्तु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल है।'[1] निराला का मुक्त-छन्द छन्द की भूमि पर रहकर भी मुक्त है। मुक्त छन्द का मुख्य आधार उसकी लय या प्रवाह ही है। 'वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम-साहित्य उसकी मुक्ति।'[2] इस छन्द में लयात्मकता के कारण ही Pleasure of Reading मिलता है। यद्यपि इन मुक्त छन्दों में अनुप्रासों का कोई क्रम निश्चित नहीं है पर अन्तरानुप्रास व दूरस्थ अन्त्यानुप्रास इनकी (अधिकांश मुक्त छन्द में लिखी) कविताओं में मिल जायेंगे। जैसे—

'दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे,
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर,
किन्तु गम्भीर, नहीं है उनमें हास-विलास।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले बालों से,
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली,
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बांह,
छांह-सी अम्बर-पथ से चली।'[3]

यहाँ आभास और हास-विलास में, एक तथा अभिषेक में, कली तथा चली में दूरान्तर अन्त्यानुप्रास है। दिवसावसान एवं आसमान, संध्या-सुन्दरी और परी में, मधुर-मधुर और अधर में तथा अलसता, कोमलता और नीरवता में मध्य अनुप्रास है।

इस प्रकार 'यह स्वच्छन्द छन्द ध्वनि अथवा लय पर चलता है। जिस प्रकार जलौघ पहाड़ से निर्झर नाद में उतरता, चढ़ाव में मंद गति, उतार में क्षिप्रवेग धारण करता, आवश्यकतानुसार अपने किनारों को काटता-छाँटता अपने लिए ऋजु-कुंचित पथ बनाता हुआ आगे बढ़ता है, उसी प्रकार यह छन्द भी कल्पना तथा

१. परिमल, भूमिका, पृ० १४
२. वहीं, पृ० २१
३. सन्ध्या सुन्दरी परिमल, पृ० १३५-१३६

भावना के उत्थान-पतन, आवर्तन-विवर्तन के अनुरूप संकुचित-प्रसारित होता, सरल-तरल, ह्रस्व-दीर्घ गति बदलता रहता है।'[१]

छन्दगत मौलिकता की दृष्टि से निराला के दोनों प्रबन्ध-काव्यों—'राम की शक्ति-पूजा' और 'तुलसीदास' के छन्द विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' का छन्द तीन अष्टकों का मिश्रण है। अष्टक का प्रयोग अधिक हुआ है। कविता के नाम के आधार पर इस छन्द का नामकरण 'शक्तिपूजा' छन्द किया गया है।[२] 'राम की शक्ति-पूजा' में इस छन्द के उदाहरण कम ही हैं, अधिकांश चरण रोला के हैं। रोला छन्द में अत्यधिक गतिशीलता होती है। अन्त्यानुप्रासहीन कविता के लिए ही यह छन्द उपयुक्त रहता है, पर निराला ने अन्त्यानुप्रासयुक्त कविता में भी इसका सफल प्रयोग किया है।

'तुलसीदास' में प्रयुक्त छन्द विषम मात्रिक छन्द है, जिसके प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम चरण में १६-१६ मात्राएँ हैं और तृतीय तथा षष्ठ में २२-२२ मात्राएँ हैं। तृतीय और षष्ठ चरण का अन्त्यानुप्रास मिलता है तथा समस्त पंक्तियों में १६ मात्राओं के पश्चात् अन्त्यानुप्रास मिलता है। देखिए—

बिखरी छूटीं शफरी-अलकें,
निष्पात नयन-नीरज पलकें,
भावातुर पृथु उर की छलकें उपशमिता;
निःसम्बल केवल ध्यान-मग्न,
जागी योगिनी अरूप-लग्न,
वह खड़ी शीर्ण प्रिय-भाव-मग्न निरुपमिता।[३]

निराला ने ठुमरी, कजली, कव्वाली आदि लोक धुनों पर भी कुछ कविताएँ लिखी हैं। कजली की धुन पर लिखी गई कविता की कतिपय पंक्तियाँ देखिये—

काले काले बादल छाये ना आये वीर जवाहर लाल
पुरवई की हैं फुफकारें, घन-घन को विष की बौछारें
हम हैं जैसे गुफा में समाये—ना आये वीर जवाहर लाल
मंहगाई की बाढ़ बढ़ आई, गांठ की छूटी गाढ़ी कमाई
भूखे नंगे खड़े शरमाये, ना आये वीर जवाहर लाल।[४]

निराला उर्दू, फारसी एवं अंग्रेजी के छन्दों से भी प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। निराला ने उर्दू-फारसी के गजल, ख्याल, रुबाइयों का प्रयोग किया है। निराला के परवर्ती काव्य में, विशेष रूप से 'बेला' में उर्दू शैली के छन्दों का प्रयोग हुआ है;

---

१. पन्त पल्लव की भूमिका, पृ० ४७-४८
२. आधुनिक हिन्दी-काव्य में छन्द योजना, डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० २६०
३. तुलसीदास, निराला छन्द ८३, पृ० ५२
४. बेला पृ० ४६

उर्दू की गजलें कुछ सुनिश्चित बहरों पर आधारित होती हैं। बेला की उर्दू की 'मुतफ़ायलुन मफ़ाइलुन मफ़ाइलुन फ़इल' बहर के वजन पर निर्मित गज़ल देखिए—

ये टहनी से हवा की छेड़छाड़ थी मगर
खिलकर सुगन्ध से किसी का दिल बहल गया
खामोश फतह पाने को रोका नहीं रुका
मुश्किल मुकाम जिन्दगी का जब सहल गया।[1]

इसी प्रकार फारसी की बहर 'फायलातुन फायलातुन फायलातुन फायलुन' के वजन पर निर्मित २७ मात्राओं का एक छन्द देखिए—

भेद कुछ खुल जाय वह सूरत हमारे दिल में है
देश को मिल जाय जो पूंजी तुम्हारे मिल में है।[2]

अंग्रेजी के 'सॉनेट' के अनुकरण पर निराला ने चतुर्दशपदियाँ भी लिखी हैं। 'सॉनेट' अंग्रेजी का एक प्रसिद्ध एवं बहुप्रचलित छन्द है। अधिकांश आंग्ल कवियों ने इस छन्द के माध्यम से भावाभिव्यक्ति की है। यह छन्द चौदह पंक्तियों का होता है; आठवीं पंक्ति पर आकर कविता को एक ऐसा मोड़ दिया जाता है जो कि प्रथम आठ पंक्तियों को अंतिम छः पंक्तियों से अलग कर देता है। अन्त्यानुप्रास इस छन्द के लिए आवश्यक होता है; पर निराला ने 'सॉनेट' को अखण्ड रूप में ही प्रयुक्त किया है और अन्त्यानुप्रास का भी सुविधानुसार प्रयोग किया है। 'अणिमा' की 'श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के प्रति', 'संत रविदास के प्रति', 'श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति' तथा 'श्रद्धांजलि' कविताएँ 'सॉनेट' के ढंग पर लिखी गई हैं। 'सॉनेट' के ढंग पर लिखी गई एक चतुर्दशपदी देखिए—

अमा निशा थी समालोचना के अम्बर पर,
उदित हुए जब तुम हिन्दी के दिव्य कलाधर।
दीप्त द्वितीया हुई लीन, खिलने से पहले,
किन्तु निशाचर सन्ध्या के अन्तर में दहले।
स्पष्ट तृतीया, खिची दृष्टि लोगों की सहसा,
छिड़ी सिद्धि साहित्यिक से, तुम से जन वचसा।
मुक्त चतुर्थी, समालोचना वधू व्याह कर,
लाये तुम, पंचमी काव्यवाणी अपने घर।
षष्ठी छः ऐश्वर्य प्रदर्शित कोष-प्राण में,
शिक्षण की सप्तमी, महार्णव सत्य-ज्ञान में।
दिये अष्टमी आठों वसु टीकाओं में भर,
नवमी शांति ग्रहों की दशमी विजित दिगम्बर।

---

१. वही पृ० ७५
२. वही पृ० ५६

एकादशी रुद्रता, रामा कला द्वादशी,
त्रयोदशी प्रदोप-गत चतुर्दशी रत्नशशी।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निराला के काव्य में छन्द-शिल्प की प्रौढ़ता, विविधता तथा परिष्कृति आदि से अन्त तक व्याप्त है। उनके काव्य में परम्परागत छन्दों का प्रयोग भी है और नयी छन्द-योजना भी है, जिसमें मुक्त छन्द से लेकर गजलें, बहरें और कजलियाँ तक दिखाई देती हैं। 'बेला' में गजलें, बहरें और कजलियाँ बड़े मनोहर रूप में सुरक्षित हैं। 'हंसी के तार होते हैं ये बहार के दिन' जैसी पंक्तियों में बहर का सौन्दर्य बड़ा मनमोहक बन गया है। मुक्त छन्द का प्रयोग और भी कवियों ने किया है, पर निराला का मुक्त छन्द अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक सफल, गतिमान है। 'अनामिका' और 'परिमल' के बाद की रचनाओं में भी (जैसे 'अणिमा' में भी) मुक्त-छन्द का सफल प्रयोग देखा जा सकता है। छन्द के बन्धन में लिखने की अपेक्षा मुक्त छन्द में लिखना कहीं अधिक कठिन प्रतीत होता है। निराला ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि मुक्त छंद स्रष्टा की अपनी विवशता नहीं है वह तो उसके व्यक्तित्व की प्रखरता, आवेग-संकुलता और संयम सामर्थ्य के प्रमाण हैं। वस्तुत: मुक्त छन्द में वही व्यक्ति कविता लिखने का अधिकारी है जिसमें संयम और आन्तरिक अनुशासन है। निराला में इस संयम की कोई कमी नहीं है तभी तो वे मुक्त छन्द को इतनी विविधता-व्यापकता में प्रसार दे सके हैं।

अलंकार-योजना

काव्य में अलंकारों का महत्व अविस्मरणीय है। अलंकारों के द्वारा कवि अपनी अनुभूतियों एवं भावनाओं को अधिक से अधिक आकर्षक ढंग से उपस्थित करता है। चन्द्रालोककार ने तो काव्य में अलंकारों के महत्व का प्रतिपादन करते हुए यहाँ तक लिखा है—

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥१८।

"अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं। वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति हैं, पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप तथा भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं। जैसे वाणी की झंकारें विशेष घटना से फेनाकार हो गई हों, विशेष झोंके खाकर बाल-लहरियों, तरुण, तरंगों में फूट गई हों, कल्पना के विशेष बहाव में पड़ आवर्तों में नृत्य करने लगी हों। वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव-भाव हैं।"[2]

---

१. अणिमा, श्रद्धांजलि, पृ० २६
२. पल्लव, भूमिका पृ० १६

किन्तु काव्य में अलंकारों की भरमार भी नहीं होनी चाहिए, जैसा कि रीतिकालीन कवियों ने किया है। इनसे कविता-वनिता का सौन्दर्य वर्धित होने की अपेक्षा बाधित ही होता है। आधुनिक काल में कवियों का ध्यान अलंकरण एवं चमत्कार-प्रदर्शन से हटकर अभिव्यक्ति की पूर्णता की ओर अधिक रहा है। पंत जी ने भी लिखा है—

"वाणी मेरी क्या तुम्हें चाहिए अलंकार।
तुम वहन कर सको जनमन में मेरे विचार।"

निराला ने अलंकारों के समुचित प्रयोग से काव्य के सौन्दर्य की अभिवृद्धि की है। अनावश्यक अलंकारों से कविता को भाराक्रान्त करने का प्रयत्न उन्होंने नहीं किया है। निराला की दृष्टि पांडित्य-प्रदर्शन की ओर नहीं रही है। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग भावों की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए किया है। उनके काव्य में उपमा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलंकारों का आधिक्य है। छायावादी कवियों ने रूप, गुण आदि के साम्य की ओर ध्यान न देकर प्रभाव-साम्य की ओर ही विशेष ध्यान दिया है। किसी भी दृश्य और स्थिति का जो प्रभाव उन पर पड़ा है उसके अनुरूप ही मूर्त्त-अमूर्त्त उपमानों की योजना इन कवियों ने की है। 'विधवा' कविता में विधवा की दयनीय तथा असहाय स्थिति का, उसकी पावनता और निर्द्वन्द्वता का, जो प्रभाव कवि के हृदय पर पड़ा उसने उसकी अभिव्यक्ति अनेक मूर्त्तामूर्त्त उपमानों द्वारा इस प्रकार की है—

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा-सी शांत, भाव में लीन,
वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की ही विधवा है।[1]

ये सभी उपमान मौलिक एवं सर्वथा नवीन हैं, साथ ही प्रभावसाम्य के आधार पर ही नियोजित हैं।

'सरोज-स्मृति' में कवि ने सरोज के यौवन का चित्रण करते हुए उसके स्वर को नववीणा पर गाये गये मालकोश से तथा धीरे-धीरे परिवर्धमान यौवन को नैश-स्वप्न से उपमित किया है—

"बाल्य की केलियों का प्रांगण
कर पार, कुंज-तारुण्य सुघर
आई, लावण्य-भार थर-थर
कांपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकोश नव वीणा पर।

1. निराला, परिमल-विधवा, पृ० १२६

नैश स्वप्न ज्यों तू मन्द मन्द
फूटी ऊषा जागरण छन्द।"[1]

पुत्री के शृंगार का चित्रण करने वाले इस कवि ने कितने पवित्र एवं गरिमायुक्त उपमानों का प्रयोग किया है। 'तुलसीदास' तथा 'राम की शक्ति-पूजा' में उपमानों की विराटता का आख्यान[2] है। 'राम की शक्ति पूजा' में राम के पृष्ठ, बाहु, वक्षादि पर विपर्यस्त जटा-मुकुट के लिए प्रयुक्त एक उपमालंकार देखिए—

"दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार।"[3]

निराला ने अनेक स्थलों पर परम्परागत उपमानों को भी ग्रहण किया है। 'पंचवटी प्रसंग' में शूर्पणखा के सौन्दर्य के चित्रण में परम्परागत उपमान ही प्रयुक्त हुए हैं।

निराला के रूपक भी बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। रूपक में उपमेय पर उपमान का अभेद आरोप किया जाता है। इसमें भी निराला का ध्यान मुख्य रूप से प्रभाव के साम्य की ओर ही रहा है। 'तुलसीदास' में रूपकों का बाहुल्य है, विशेष रूप से सांगरूपकों का। एक सांगरूपक देखिए—

प्रेयसी के अलक नील, व्योम;
दृग-पल, कलंक; मुख मंजु, सोम;
निःसृत प्रकाश जो, तरुण क्षोभ प्रिय तन पर;
पुलकित प्रतिपल मानस-चकोर
देखता भूल दिक् उसी ओर;
कुल इच्छाओं का वही छोर जीवन-भर।[4]

यहाँ प्रेयसी की घन नीलालकें ही आकाश हैं, मुख चन्द्र है, दृग कलंक हैं। उसके तन से निःसृत कांति ही चन्द्रिका है। इस मुख-चन्द्र को देखकर कवि का मन-चकोर प्रतिपल पुलकित होने लगा। इसी प्रकार का रूपक कवि ने 'सखी री यह डाल वसन वासंती लेगी'[5] में बाँधा है। यहाँ सखी डाल के वसंत-तप तथा पार्वती के शिव-तप में कवि ने अभेद स्थापित किया है। 'तुलसीदास' के निम्नोक्त छंद में उपमा, रूपक तथा अतिशयोक्ति अलंकारों का अत्यन्त सौन्दर्य-विवर्धक प्रयोग

---
१. अनामिका, सरोज-स्मृति, पृ० १२६
२. निराला काव्य और व्यक्तित्व, पृ० २०८
३. अनामिका राम की शक्ति-पूजा, पृ० १४६
४. निराला, तुलसीदास, पृ० ४७
५. गीतिका, पृ० १६

हुआ है—

अस्तु रे, विवश मारुत-प्रेरित,
पर्वत-समीप आकर ज्यों स्थित
घन-नीलालका दामिनी जित ललना वह;
उन्मुक्त-गुच्छ चक्रांक-पुच्छ,
लख, नर्तित कवि-शिखि-मन समुच्च
वह जीवन की समझा न तुच्छ छलना वह।[1]

यहाँ कवि ने रत्नावली को मारुत-प्रेरित सौदामिनी के रूप में, कवि (तुलसीदास) को पर्वत के रूप में और कवि के मन के उल्लास को मयूर के नृत्य के रूप में चित्रित किया है।

उपमा और रूपक के अतिरिक्त कतिपय अन्य अर्थालंकारों का प्रयोग भी निराला के काव्य में हुआ है। जैसे—

संदेहालंकार

मद-भरे ये नलिन-नयन मलीन हैं;
अल्प-जल में या विकल लघु मीन हैं?
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी
बीत जाने पर हुये ये दीन हैं?[2]

विरोधाभास

रसना रस-नाम-रहित
किन्तु रस-ग्राहिका।[3]

शब्दालंकारों में निराला को अनुप्रास विशेष रूप से प्रिय रहा है। इसके वे आचार्य हैं।[4] भावों के अनुकूल कोमल एवं कठोर वर्णों की आवृत्ति उन्होंने बार-बार की है। अनुप्रास अलंकार का एक उदाहरण देखिए :—

'जलद नहीं,—जीवनद, जिलाया
जब कि जगज्जीवन्मृत को।
तपन-ताप-सन्तप्त तृषातुर
तरुण-तमाल-तलाश्रित को।
पय-पीयूष पूर्ण पानी से
भरा प्रीति का प्याला है।

१. निराला, तुलसीदास, पृ० ५२
२. परिमल—नयन, पृ० ७८
३. अनामिका—रेखा, पृ० ७४
४. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी

नव वन, नव जन, नव तन, नव मन,
नव घन ! न्याय निराला है ।[1]

आधुनिक छायावादी काव्य में पश्चिम के प्रभाव से मानवीकरण (Personification), विशेषण-विपर्यय (Transferred Epithet) और ध्वन्यर्थ-व्यंजना (Onowatopocia) आदि अलंकारों का प्रयोग अधिकता से हुआ है। निराला के काव्य में विशेषण-विपर्यय के उदाहरण बहुत ही कम मिलते हैं, पंत में इस अलंकार को प्रचुरता से देखा जा सकता है। मानवीकरण एवं ध्वन्यर्थ-व्यंजना का प्रयोग निराला ने बहुत किया है।

मानवीकरण की परम्परा हमारे यहाँ प्राचीनकाल से चली आती रही है, परन्तु आधुनिककाल में पाश्चात्य प्रभाव के कारण इसे अलंकार विशेष के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। 'मानवीकरण से काव्य में नाटकीय प्रभाव (Dramatic Effect) की वृद्धि होती है और इस प्रकार उसकी व्यंजना शक्ति और प्रभावशीलता बढ़ जाती है।'[2] निराला के काव्य में इस अलंकार का प्रयोग-बाहुल्य है। मानवीकरण की दृष्टि से 'जुही की कली', 'शेफालिका', संध्या-सुन्दरी,' 'तरंगों के प्रति', 'यमुना के प्रति,' 'यामिनी', आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं। 'जुही की कली' में कवि ने 'जुही की कली' को नायिका एवं मलयानिल को नायक के रूप में चित्रित कर, उन पर मानवीय क्रियाकलापों का आरोप किया है—

'विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी—स्नेह-स्वप्न-मग्न—
अमल-कोमल-तनु तरुणी—जुही की कली,
दृग बन्द किए, शिथिल, —पत्रांक में,
× × × ×
विरह-विधुर-प्रिया-संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।'[3]

'संध्या-सुन्दरी' में कवि ने संध्या को एक सुन्दरी के रूप में चित्रित किया है, जो दिवसावसान के समम मेघमय आकाश से धीरे-धीरे उतर रही है—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे

१. परिमल, जलद के प्रति, पृ० ८२
२. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० १५४
३. परिमल—जुही की कली, पृ० १६१

....

मदिरा की वह नदी वहाती जाती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला वह एक पिलाती ।[1]

'गितिका' के 'देकर अन्तिम कर रवि गये अपर मार' में भी संध्या का इसी प्रकार का मानवीकृत चित्र अंकित है—

अम्बर-पथ से मन्थर
सन्ध्या श्यामा,
उतर रही पृथ्वी पर
कोमल-पद-भार ।[2]

'वन कुसुमों की शय्या' में भी कवि ने विभिन्न प्राकृतिक उपमानों का मानवीकरण किया है। शरत् और शिशर को कवि ने दो वहनों के रूप में चित्रित किया है; अग्रजा वर्षा आकर इन्हें जगाती है। सद्य-जाग्रता के रूप में भी इन दोनों वहनों का वहुत ही स्वाभाविक वर्णन हुआ है—

वन-कुसुमों की शय्या पर एकान्त ।
सोती हुई सरोज-अंक पर
शरत्-शिशर दोनों वहनों के
सुख-विलास-मद-शिथिल अंक पर
पद्म-पत्र पंख झलते थे,
मलती थी कर-चरण-समीरण धीरे-धीरे जाती—
नींद उचट जाने के भय से थी कुछ कुछ घवराती
वड़ी वहन वर्षा ने उन्हें जगाया,—[3]

इस प्रकार अनेक कविताओं में कवि ने प्रकृति को मानवीय भावनाओं एवं चेष्टाओं के रंग में रंग कर चित्रित किया है।

छायावादी काव्य में वहुप्रचलित एक अन्य अलंकार ध्वन्यर्थ व्यंजना का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। पश्चिम का वह अलंकार वहुत कुछ अनुप्रास की ही कोटि का है। इससे शब्दों की ध्वनि या नाद से ही अर्थ व्यंजित हो जाता है। यह हमारे समक्ष सम्पूर्ण भाव का एक ध्वनि-चित्र उपस्थित कर देता है। साथ ही इससे काव्य में संगीतात्मकता की भी अभिवृद्धि होती है। निराला ने इस अलंकार का प्रयोग अपने काव्य में अत्यधिक सफलता से किया है। 'राम की शक्ति-पूजा' की प्रारम्भिक पंक्तियां पढ़ते ही युद्धकालीन विभीषिका का दृश्य हमारे सामने आ जाता

१. निराला, परिमल, संध्या-सुन्दरी, पृ० १३५
२. निराला, गीतिका, पृ० १०२
३. निराला, परिमल, वन-कुसुमों की शय्या, पृ० १५३

है। इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियां बादलों के गरजने और मूसलाधार वर्षा होने की सूचना दे रही हैं।

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर।
राग-अम्बर। अम्बर में भर निज रोर।
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में,
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में।"[1]

इस प्रकार निराला के काव्य में प्राचीन और नवीन अनेक प्रकार के अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। ये अलंकार बाहर से लादे न जाकर काव्य-धारा के प्रभाव में स्वाभाविक रूप से आ गये हैं। वस्तुतः निराला स्वयं भावों के अकृत्रिम और सहज प्रकाशन के पक्ष में ही अधिक थे।

प्रतीक-योजना

प्रतीक का प्रयोग हम साहित्य के अतिरिक्त अपने दैनिक जीवन में भी करते है। आज का जीवन इतना व्यस्त है कि व्यक्ति के पास अपनी बात को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत करने के लिए समय का अभाव एक समस्या बन गया है। इसी कारण जहाँ हम अपनी बोल-चाल में साधारण शब्दावली की अपेक्षा लाक्षणिक और व्यंजना प्रधान शब्दावली का प्रयोग करते है वहाँ अपनी बात को कम शब्दों में अधिक अर्थ के साथ कहने की कोशिश भी करते हैं। इसी प्रयोग में कुछ दैनिक जीवन की वस्तुएँ भी प्रतीक बनकर आती हैं। प्रतीक का महत्व सामाजिक दृष्टि से भी बढ़ा दिखाई देता है। समाज एक समूह है जिसमें एकता का भी हाथ है। इस एकता को प्रतीक के माध्यम से अभिव्यक्ति देने के प्रयास प्राचीन समय में भी हुए हैं। अतः जहाँ तक प्रतीक की उत्पत्ति का प्रश्न है उसके लिए यही कहना ठीक है कि धर्म, नीति, संस्कृति के रूप में ही इनका उद्‌भव हुआ है। इसका प्रमाण सिद्धों और नाथों का काल है, जिसमें एक ओर सांस्कृतिक प्रतीक है तो दूसरी ओर सैद्धान्तिक प्रतीक हैं।

प्रतीक भावाभिव्यक्ति के सशक्त साधन हैं। प्रतीकों के माध्यम से अर्थ की अभिव्यक्ति ही नहीं होती, अपितु कवि के मनोगत भावों का एक मार्मिक यथातथ्य चित्र भी उपस्थित हो जाता है। ये अत्यल्प शब्दों में ही विशद भाव की अभिव्यक्ति कर देते हैं। वे उपमानों से नितान्त भिन्न होते हैं। उपमानों के लिए जहाँ गुण। धर्म का सादृश्य आवश्यक होता है वहाँ प्रतीकों के लिए प्रभाव-साम्य तथा भावो द्वेलन की शक्ति ही अपेक्षित होती है।

१. निराला, परिमल, बादल-राग, पृ० १७५

प्रतीकों में व्यंजकता बहुत अधिक होती है। व्यंजकता सार्थक प्रतीक योजना की एक महत्वपूर्ण शर्त है। जैसा कि अंडरहिल महोदय लिखते हैं :—

"प्रतीक की व्यंजकता का जितना अधिक उपयोग किया जाता है सम्बोधित के प्रति वह उतना ही अधिक भावोदय व्यक्त करता है तथा सत्यप्रेषण उतना ही अधिक होता है। अतएव एक सफल प्रतीक केवल रेखाचित्र या रूपक ही नहीं होता, वरन् उसमें सौन्दर्य और संवेदन के साधन भी सन्निहित होते हैं।"[1]

हमारे यहाँ प्रतीकों की परम्परा बहुत ही प्राचीन काल से रही है। वेदों, उपनिषदों में प्रतीकों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। सिद्धों और नाथों में तो सांकेतिक प्रतीकों का प्राधान्य रहा है। आधुनिक छायावादी काल भी प्रतीकों की दृष्टि से सम्पन्न रहा है। छायावादी कवियो ने अनेक परम्परागत प्रतीकों को तो ग्रहण किया ही है, साथ ही अनेक मौलिक प्रतीकों की भी उद्भावना की है। छायावादी कवियो ने प्रभाव-साम्य की ओर ही विशेष रूप से ध्यान दिया है। "छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभाव-साम्य पर ही विशेप लक्ष्य रख कर चला है। कहीं-कहीं तो, वाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यन्त अल्प या न रहने पर भी, आभ्यंतर प्रभाव-साम्य को लेकर ही अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप या प्रतीकवाद होते हैं—जैसे सुख, आनन्द, प्रफुल्लता, यौवनकाल इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक ऊषा, प्रभात, मधुकाल, प्रिया के स्थान पर मुकुल; प्रेमी के स्थान पर मधु, दीप्तिमान या कांतिमान के स्थान पर स्वर्ण: विषाद या अवसाद के स्थान पर अंधकार, अंधेरी रात, या संध्या की छाया, पतझड़; मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झंझा; तूफान; भाव तरंग लिए संगीत या मुरली के स्वर इत्यादि।"[2] वस्तुतः छायावादी काव्य में इन प्रतीकों का प्रयोग बहुलता से हुआ है।

छायावादी कवियों में निराला और प्रसाद के प्रतीक अपना विशेष महत्व रखते हैं। स्थूल रूप से प्रतीकों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—(१) सांस्कृतिक, (२) प्राकृतिक तथा (३) सैद्धांतिक प्रतीक[3]। निराला के काव्य में प्राकृतिक प्रतीकों के साथ साथ सांस्कृतिक प्रतीकों का सफल प्रयोग द्रष्टव्य है। संस्कृति के अंतर्गत धर्म, इतिहास आदि सभी तत्वों का समावेश हो जाता है। निराला द्वारा प्रयुक्त एक धार्मिक प्रतीक देखिए :—

"वामपद असुर स्कन्ध पर
रहा दक्षिण हरि स्कन्ध पर।"[4]

---

१. देखिये, ई० अन्डरहिल : मिस्टीसिज्म, पृ० १३
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६७१
३. कैलाश वाजपेयी, आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ० ७७
४. अनामिका (राम की शक्ति-पूजा), पृ० १६४

यहां शाक्त धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। शाक्त धर्म के अंतर्गत शक्ति के असुर-संहारिका-रूप की ही कल्पना की गई है।

निराला के प्राकृतिक प्रतीक बहुत ही आकर्षक एवं प्रभविष्णु बन पड़े हैं। दुःख, सुख, नैराश्य, अवसाद आदि के लिए अनेक प्रतीक संयोजित किये गये हैं, जैसे—

"जहां हृदय में बालकेलि की कलाकौमुदी नाच रही थी,
किरण बालिका जहां विजन-उपवन-कुसुमों को जांच रही थी।
....
आज उसी जीवन-वन में घन अंधकार छाया रहता है,
दमन-दाह से आज, हाय, वह उपवन मुरझाया रहता है।"[1]

यहां प्रथम दो पंक्तियों के प्रतीक लाक्षणिकता लिये हैं। वे लाक्षणिक रूप से प्रफुल्ल, ऐश्वर्यमय जीवन की व्यंजना करते हैं। अंतिम दो पंक्तियों के प्रतीक शुद्ध-प्रतीक हैं। अंधकार, मुरझाना आदि दुःख, विषाद एवं नैराश्य के प्रतीक हैं। इसी प्रकार के कुछ अन्य प्रतीकों की योजना देखिये :—

१. "गये सब पराग, नहीं ज्ञात;
शून्य डाल, रही अन्ध रात,
आयेगा फिर क्या वह प्रात।"[2]

२. जला है जीवन यह
आतप में दीर्घ काल;
सूखी भूमि, सूखे तरु,
सूखे सिक्त आलवाल,
बन्द हुआ गुंज, धूलि
धूसर होगये कुंज,
किन्तु पड़ी व्योम उर
बन्धु, नील-मेघमाला।[3]

यहां 'पराग', 'शून्य डाल', 'अन्ध रात', 'प्रात', 'आतप', 'सूखी भूमि', 'तरु', 'आलवाल', 'गुंज', 'नील मेघमाला' आदि का प्रयोग प्रतीकात्मक है। निराला ने यौवन के लिए वसंत, वार्धक्य के लिए सांध्यवेला, जीवन के लिए मेला आदि प्रतीकों का प्रयोग किया है। नीचे के उद्धरणों में देखिये—

१. अभी न होगा मेरा अन्त।
अभी अभी ही तो आया है
मेरे वन में मृदुल वसंत।[4]

---

१. अनामिका, अनुताप, पृ० ४८
२. गीतिका, पृ० २५
३. अनामिका, उक्ति, पृ० ६०
४. परिमल, ध्वनि, पृ० १२०

२. मैं अकेला
देखता हूं आरही
मेरे दिवस की सांध्यवेला।
पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रभ गाल मेरे
चाल मेरी मंद होती आ रही,
हट रहा मेला।[1]

'अनामिका' की 'ठूंठ'[2] कविता में कवि ने बहुत ही सार्थक प्रतीकों की योजना की है। ठूंठ वार्धक्य के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। वृद्धावस्था में मनुष्य भी ठूंठ समान नीरस, सौन्दर्य विहीन तथा अशक्त हो जाता है, अब उसे यौवन वसंत अधीर नहीं करता है, कुसुमायुध के पंचवाणों से वह आहत नहीं होता है।

निराला ने प्रतीकों के माध्यम से आत्मा और परमात्मा के परस्पर सम्बन्धों की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। उनके लिए प्रयुक्त, उनके सम्बन्धों को व्यक्त करने वाले प्रतीकों की योजना निराला की प्रसिद्ध कविता 'तुम और मैं' में हुई है—

तुम तुङ्ग-हिमालय-शृंग
और मैं चंचल गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कान्त-कामिनी-कविता।[3]

आत्मा और परमात्मा को निराला ने अधिकांशतः प्रेयसी और प्रियतम के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने उनके पारस्परिक सम्बन्धों को विभिन्न रति-चेष्टाओं तथा दाम्पत्य सम्बन्धों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। 'जुही की कली'[4] में जुही की कली और मलय पवन एक ओर तो नायक-नायिका के रूप में चित्रित किये गये है तथा दूसरी ओर इसमें रहस्यात्मक संकेत भी निहित किये गये हैं। जुही की कली आत्मा का प्रतीक है और मलय पवन परमात्मा का। इसी प्रकार 'मौन रही हार'[5] में प्रियतम के पथ पर चलती हुई अभिसारिका आत्मा के प्रतीक रूप में वर्णित हुई है। 'प्रेयसी'[6] कविता में प्रेयसी आत्मा का प्रतीक है, जो प्रियतम को भूल कर, अपने वास्तविक स्वरूप से विमुख होकर 'मर्त्य' में 'स्वर्ग' का सुख पाने के लिए चल दी है।

---

१. अपरा—निराला, पृ० ५५-५६
२. अनामिका, पृ० १३६
३. परिमल, तुम और मैं, पृ० ८४
४. परिमल, पृ० १६२
५. गीतिका, पृ० ८
६. अनामिका, पृ० ५

प्रतीकों की मौलिकता और नवीनता की दृष्टि से निराला की 'कुकुरमुत्ता' कविता उल्लेखनीय है। 'कुकुरमुत्ता' में कुकुरमुत्ता शोषित सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है और गुलाब शोषक पूँजीपति वर्ग का। कुकुरमुत्ता द्वारा की गई गुलाब की भर्त्सना में पूंजीपतियों के प्रति आक्रोश व्यक्त हुआ है।

इस प्रकार अनेक मूर्त और अमूर्त प्रतीकों की योजना निराला काव्य में हुई है। ये प्रतीक काव्याभिव्यक्ति को अधिक प्रेपणीय, चित्रात्मक एवं मार्मिक बनाने में सहायक हुए हैं।

समग्र रूप में देखें तो छायावादी कविता परम्परागत प्रतीकों के स्थान पर नयी प्रतीक-योजना को लेकर चली है। फिर भी इन कवियों की कविताएं एक ओर परम्परामुक्त प्रतीकों से युक्त हैं तो दूसरी ओर नये स्वतन्त्र प्रतीकों को भी स्थान मिला है। छायावादी कवियों के प्रतीक प्रमुख रूप से प्राकृतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक हैं। पन्त, प्रसाद, निराला के प्रतीकों में एक स्पष्ट अन्तर दिखाई देता है। प्रसाद के काव्य में प्रमुखता सैद्धान्तिक प्रतीकों की है, पंत ने प्रकृति प्रतीकों को अपनाया है तो निराला ने धार्मिक, पौराणिक और ऐतिहासिक प्रतीकों को प्रश्रय दिया है, पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि निराला के काव्य में प्राकृतिक और सैद्धांन्तिक प्रतीक नहीं हैं; हमारा उपर्युक्त विवेचन इस बात को स्पष्ट कर देता है।

: ७ :

उपसंहार

छायावादी कवियों में निराला का स्थान

आधुनिक हिन्दी-कविता में छायावाद अपने काव्यगत औदात्य, मूल्यगत गरिमा तथा पद्धति सम्बन्धी वैशिष्ट्य के कारण विशेष स्थान का अधिकारी है। छायावाद को अपने विकासक्रम में एक ओर अनेक टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों से होकर गुजरना पड़ा है। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी को मिलाकर छायावाद की चतुष्टयी तैयार हो जाती है। निराला के काव्य की तुलनात्मक मीमांसा के लिए प्रसाद, पंत और महादेवी के काव्य को परखना अनिवार्य है। इन कवियों के बीच निराला कहाँ खड़े हैं, यह भली भांति तभी जाना जा सकता है जबकि इन तीन कवियों के समक्ष निराला को प्रस्तुत करें।

छायावाद की विशेषताएँ : व्यक्तिवादिता

प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी चारों ही छायावादी कवि हैं, फिर भी इसके आरम्भकर्ता के रूप में साधारणतया प्रसाद का ही नाम लिया जाता है। इसका प्रधान कारण यही है कि प्रसाद की दृष्टि सदैव युग प्रवद्ध रही है। पंत, निराला और महादेवी ने भी इसे समृद्ध बनाया है। पंत ने काव्य को कल्पना दी, निराला ने बुद्धि और कल्पना का सम्मिलन कर काव्य को नूतन दृष्टि दी। महादेवी ने इस काव्य में पीड़ा का संचार किया। वैयक्तिकता इस धारा की सर्व प्रथम विशेषता है जो प्रमुखतः आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण ही पनपी। रीतिकालीन कविता इस वैयक्तिकता से दूर थी। छायावाद-काल में इस व्यक्तिवादिता के परिणामस्वरूप जो नए मूल्य स्थापित हुए वे अपने पूर्ववर्ती युग से एकदम भिन्न पटरी पर चले। इसके प्रति थोड़ी बहुत सहानुभूति तो सभी कवियों ने दिखलाई है। प्रसाद तो छायावाद का उद्भव ही वेदनामयी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति से मानते हैं। पंत की 'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान' पंक्तियों में इसी तत्व की गूंज सुनाई पड़ती है और जब निराला 'मैंने मैं शैली' अपनाई...झट उमड़ वेदना आई' जैसी पंक्तियाँ लिखते हैं तो इसी वैयक्तिकता के स्वर में बोलते हुए प्रतीत होते हैं। निराला वैयक्तिकता को व्यापक धरातल पर देखते हैं। महादेवी जो 'नीर भरी दुःख

की बदली हैं' और जिनके प्राण विकल हैं, पलायनवादी न होकर आत्म-प्रसार का ही संकेत करती हैं—

'फिर विकल हैं प्राण मेरे
तोड़ दो यह क्षितिज, मैं भी देख लूं उस पार क्या है ?
जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है ?
क्यों मुझे प्राचीर बनकर आज मेरे श्वास घेरे ?"[1]

कल्पनाशीलता

इन कवियों की इस व्यक्तिवादिता ने इन्हें कल्पनाशील बना दिया है। कल्पना-कौतुक पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी, चारों में मिलता है। पंत का सारा काव्य कल्पना का ही उन्मुक्त विलास है। वे कहते हैं कि 'मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूँ और ईश्वरीय प्रतिमा का अंश भी मानता हूँ।' अंग्रेजी के कवि कॉलरिज, शैली, वर्ड्सवर्थ और कीट्स ने भी कल्पना को एक दैवी शक्ति के रूप में ही स्वीकार किया है। वैसे कल्पना के अभाव में कविता ही खड़ी नहीं हो सकती और इसे सभी काल के कवियों ने अपनाया है, पर इन कवियों में इसके प्रति कुछ अधिक आसक्ति दिखाई देती है। महादेवी की दृष्टि में लोक-समष्टि ही इष्ट है, पर लोक के दान को निरीह भाव से अंगीकार कर लेना उसे अभीष्ट नहीं। वे लोक का निर्माण भी कल्पना के अनुरूप चाहती हैं। निराला की कविता में वास्तविक पुष्पों के खिलने में वैसा सौंदर्य नहीं, जैसा कल्पना वल्लरी पर लगे पुष्पों में, क्योंकि कल्पना का कार्य पुनः सृजन है। निराला कहते हैं—

'देखता हूं,
खिलते नहीं हैं फूल जैसे वसन्त में
जैसे तव कल्पना वल्लरी की डालों पर खिलते हैं।'

निराला और व्यक्तिवाद

इस वैयक्तिकता और कल्पनाशीलता ने जहाँ एक ओर इन कवियों की कविता को एक ऊंचाई पर प्रतिष्ठित किया है वहाँ दूसरी ओर कल्पनाधिक्य और वैयक्तिकता ने उन्हें संकीर्ण दुनियाँ में घुमाफिराकर जहाँ का तहाँ छोड़ दिया है। हाँ, निराला इस अति वैयक्तिकता के शिकार होने से बच गए हैं। उनके काव्य में विविधता, व्यापकता और प्रकार है। उन्होंने जीवन और जगत् को देखा था और उसके परिणामस्वरूप उनके अन्तर का आवेग यों फूटा—

देखा, नव श्री सुख शोभा से
लहराता जग विविध प्रकार
....

१. यामा, महादेवी वर्मा, पृ० २३२

जगजीवन में उल्लास मुझे
नव आशा, नव अभिलाष मुझे[1]

निराला की यह प्रसार भावना उल्लास से मिलकर अति व्यापक हो गई, पर प्रसाद, पंत और महादेवी के विषय में यह नहीं कहा जा सकता। प्रसाद मुख्यतः वैयक्तिक संवेदनाओं के कवि हैं। पंत में वैविध्य है ही नहीं महादेवी, उनका काव्य आदि से अन्त तक एकतान और एकरस है। एक बात और है कि निराला सदैव प्रगतिशील रहे हैं। उन्होंने क्रांति की है। वे वस्तुतः क्रान्तिकारी कवि हैं। जैसे मध्य-काल में कबीर ने एक साथ समाज, धर्म, दर्शन और साहित्य सब पर एक साथ धावा बोल दिया था, उसी प्रकार निराला ने भी समाज, धर्म और दर्शन के क्षेत्र में क्रांति की है।

मानवतावाद

इसी के कारण उनके काव्य का मूल स्वर मानवतावाद का स्वर है जो अन्य कवियों की तुलना में निराला में सर्वाधिक महत्व का है। वे मनुष्य को अमृतपुत्र मानते है। उन्होंने मानवता का उद्घोष भी समय-समय पर किया है। वे मानव की विषमताओं का उल्लेख करते है, पर उसे परस्पर भिन्न नहीं मानते हैं। प्रसाद मानवतावादी से अधिक आनन्दवादी हैं। यद्यपि यह आनन्दवाद से एक ओर मेल खाता है तो दूसरी ओर वैभिन्य भी प्रकट करता है। प्रसाद 'विजयनी मानवता हो जाय' कहकर यद्यपि मानवतावादी दृष्टिकोण के ही पोषक प्रतीत होते हैं, पर प्रारम्भ से अन्त तक उनका सारा प्रयास आनन्दवाद के लिये ही है, जिसकी प्रतिष्ठापना उन्होंने अपने कामायनी काव्य में निम्न पंक्तियों में की है—

'समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था;
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था।[2]

इतना ही नहीं उनकी कृतियों का मूलस्वर आनन्दवाद ही है। इसका मूल कारण उनका व्यक्तिवाद है। मानव समस्याओं को लेकर 'चित्राधार' में उन्होंने अनेक गीत लिखे हैं। वे मानवता की भूमि में पनपे हैं और मानवता के लक्ष्य की ओर बढ़े हैं, पर व्यापक मानवता की भूमिका पर वे अपने काव्य को प्रस्तुत नहीं कर सके। कामायनी में नहीं, कई अन्य ग्रन्थों में भी प्रसाद का मानव एक धरातल पर उतरकर समरस के आस्वादन में मग्न दिखाई देता है। पंत के काव्य में मानवता का स्वरूप कुछ अधिक रंगीन रेखाओं से चित्रित है। वैसे पंत मूलतः प्रकृति के ही कवि हैं, पर वस्तुतः वे प्रकृति से ही मानव की ओर झुके हैं। कहा जाता है कि प्रकृति से ही मनुष्य शिक्षा लेता है। पर पंतजी 'गुंजन' में इस धारणा को बदल कर यह

१. पंत, पल्लविनी, उन्मन, पृ० १८०
२. कामायनी, पृ० २९४

कहना चाहते हैं कि यह प्रकृति ही है जो मानव से हँसना, रोना, मिलना सखती है। वे 'गुंजन' में मानव की स्तुति इस प्रकार करते हैं—

तुम मेरे मन के मानव,
मेरे गानों के गाने ;
मेरे मानस के स्पन्दन,
प्राणों के चिर पहिचाने ।[1]

और इतना ही नहीं, वे तो समस्त प्रकृति को मानव-हृदय की प्रतिच्छाया घोषित करते हैं। इसी से 'ज्योत्स्ना', 'युगान्त' में मानव का यशोगान व्यापक धरातल पर दिखाई देता है। वे मानव को सम्पूर्ण सृष्टि में अनुपम मानते हैं और मानव का परिचय देते हुए कहते हैं—

"गा, कोकिल, सन्देश सनातन।
मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन,
वह न देह का नश्वर रजकण।
देशकाल हैं उसे न बन्धन,
मानव का परिचय मानवपन।"[2]

इस मानवतावादी दृष्टिकोण को निराला ने इन सबसे गहरे उतर कर काव्य में चित्रित किया है। निराला वस्तुतः मानवतावाद के पोषक हैं। आज के हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख और ईसाई, सभी के विचारों में परिवर्तन आ गया है। निराला कहते हैं—

नहीं यह कल्पना
सत्य है मनुष्य का
मनुष्यत्व के लिए
बन्द है जो दल अभी
किरण सम्पात से
खुल गए वे सभी[3]

निराला का मानवतावाद वस्तुतः उनकी निजी विशेषताओं की समष्टि है। सन् '४० के बाद की रचनाओं में जहाँ निराला प्रगतिशीलता के प्रति आग्रह करते हैं, वहाँ दूसरी ओर वे मानवतावादी हैं। उनका स्वर मुख्यतः जनवादी हो गया है। स्वामी विवेकानन्द ने सर्वत्र एक ही आत्मा का उल्लास माना है और सच पूछा जाय तो निराला के मानवतावादी स्वर की भित्ति को इसी ने मजबूत किया है। एक मानवतावादी के रूप में निराला गा उठते हैं—'तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्'। इस मानवता का विकास युग-जीवन के संघर्षो की भूमिका में भी हुआ है। डा०

१, गुंजन, मानव, पृ० ३५
२, पंत, युगपथ—गा कोकिल, पृ० १३
३. निराला, अणिमा

धनंजय वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि "निराला के मानवतावाद को किसी आनुषंगिक विषय के रूप में न लेना चाहिए। वह किसी आन्दोलन, किसी कार्य-क्रम की प्रतिपत्ति नहीं है, उसकी अन्विति स्वतंत्र है, यद्यपि प्रेरणा के रूप में वह अद्वैतवादी दर्शन से सम्बद्ध है।"[1] निराला के काव्य का जनवादी स्वर बिल्कुल मानवतावादी ही है। हम जनवाद को मानवतावाद से पृथक् करके देख भी नहीं सकते हैं। वैसे प्रसाद भी मानवतावादी दार्शनिक है, लेकिन उनमें जनवादी रूप नहीं है। निराला को केवल इस अर्थ में ही जनवादी कहा जा सकता है कि उनका काव्य शोषित, दलित और कृषकों की विषम स्थिति के चित्रण से युक्त है। उनके काव्य में अनेक ऐसे स्थल मिलते है जहाँ वे शोषित एवं पीड़ित जनता का आर्तनाद प्रस्तुत करते हैं। उनकी 'भिक्षुक', 'विधवा' और 'नई बहू की आँखें' आदि कुछ ऐसी कविताएँ है, जिनमें असामाजिकता के प्रति असन्तोष व्यक्त किया गया है। 'जागो फिर एक बार' निराला की एक ऐसी कविता है जिसमें सभी भारतवासियों को जागृति का संदेश दिया गया है। 'शिवाजी का पत्र' में भी मानवता के प्रति गहरी आस्था व्यंजित है—

साम्राज्यवादियों की भोग-वासनाओं में,
नष्ट होंगे चिरकाल के लिये।
जायेगी भाल पर
भारत की नई ज्योति,
हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से
दासता के पाश कट जायेंगे।[2]

वास्तविकता यह है कि साम्राज्यवाद साम्राज्य को भोग की वस्तु समझ कर मानवता की ओर से मुख मोड़ लेता है। अतः इन पंक्तियों में इसका विरोध मानवतावादी विचारों के पल्लवन के हेतु हुआ है। छायावाद के इन कवियों की दृष्टि में मानवतावाद यह मानकर चला है कि मनुष्य प्रत्येक क्षेत्र में स्वतन्त्रता अर्जित कर सकता है और इस प्रकार एक अभीप्सित समाज का सृजन हो सकता है। वस्तुतः उसकी दृष्टि मानव के महत्तम रूप पर टिकी है। मानवतावादी कवियों में निराला की दृष्टि बड़ी गहरी उतरी है। उनके मानवतावाद की परिधि में जन-जीवन, सामाजिक चेतना, राष्ट्रीयता तथा मानव की मुक्ति की माँग, सभी कुछ समाया हुआ है।

नर-नारी

मानवतावादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत नर और नारी का सम्बन्ध भी आता है। स्वर्गीय प्रसाद ने नारी को श्रद्धा की पुतली एवं त्याग की प्रतिमा बतलाया है। उनकी नारी में समर्पण का भाव और सब कुछ दे देने के बाद कुछ न लेने की भावना —

१. डा० धनंजय वर्मा, निराला : व्यक्तित्व और काव्य, पृ० २३८
२. परिमल—महाराज शिवाजी का पत्र, पृ० २३६

विद्यमान है। वे तो यही कहते हैं—

"नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नगपगतल में ;
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में ।"[1]

उधर पंत की नारी अपने आप में 'अकेली सुन्दरता कल्याणी' है। वस्तुतः पंतजी की नारी विषयक दृष्टि में 'रोमानी' आदर्श तो है ही, पर उसे अनेक स्थलों पर विभिन्न चश्मों से देखने की प्रवृत्ति विद्यमान है। इस विषय में उनका दृष्टिकोण स्थायी नहीं रह सका है। उसमें एक चुलबुलाहट है। वे एक ओर तो नारी को पवित्र रूप प्रदान करते हुए कहते हैं कि—

तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा-स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याण
त्रिवेणी की लहरों का गान[2]

नारी-हृदय स्वर्ग का आगार है; मृदुल, कोमल और आराधना योग्य है; और दूसरे धरातल पर कहते हैं—

तुम सब कुछ हो, फूल, तितली, विहगी, मार्जारी,
आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ, नहीं सिर्फ तुम नारी।[3]
अंग अंग उसका नर के वासना-चिह्न से मुद्रित,
वह नर की छाया, इंगित संचालित, चिर पद लुंठित।[4]

स्पष्ट है कि पंत की दृष्टि नारी के विभिन्न रूपों की ओर आकर्षित होती हुई भी कोई निश्चित मत स्थिर नहीं कर पाती है। इसलिए पहली पंक्ति में तो वे नारी-हृदय के भीतर स्वर्ग बसाते हैं और दूसरी में उसी हृदय में नरक की स्थिति की ओर भी संकेत करते हैं; पर निराला ने उसे सदैव 'वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में तागी' कहकर अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया है। निराला ने नारी-हृदय में प्रवेश कर उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। 'बहू' कविता में भारतीय नारी की मूक अभिलाषा, लज्जा, स्मित आदि की भावमयी व्यंजना है। उसकी रूप-माधुरी सरोवर की एक तरंग है। उसमें चांचल्य का लेश भी नहीं है। वह सिकुड़ी सिमटी सी लज्जाशीला नारी है। वह कुछ भी कहने को अपने अधर नहीं खोलती है। उसका मौन ही सारी भावनाएँ व्यंजित कर देता है। इतना ही नहीं, उसकी साधना,

१. प्रसाद, कामायनी—लज्जा सर्ग, पृ० १०६
२. पल्लव—आंसू की बालिका
३. ग्राम्या, पंत—'आधुनिका' कविता, पृ० ८३
४. ग्राम्या, पंत—नारी कविता, पृ० ८५

आकांक्षा और जीवन की अनेक साधें पति में ही केन्द्रित हैं। भारतीय नारी का समर्पण भी उसमें है। इन सभी भावों की पुतलिका निराला की नारी है—

"सरलता ही से उसकी होती मनोरंजना,
नीरवता हा करती उसकी पूरी भाव-व्यंजना
अगर कहीं चंचलता का प्रभाव कुछ उस पर देखा
तो थी वह प्रियतम के आगे मृदु स्निग्ध हास्य की रेखा;
विना अर्थ की—एक प्रेम ही अर्थ—और निष्काम
और वहाती हुई शान्ति-सुख की धारा अविराम।
............उसकी साधना
केवल निज सरोज-मुख पति को ताकना"[1]

महादेवी का काव्य वेदना का काव्य है। अतः वहां पर नारी-हृदय की पीड़ा ही अभिव्यक्त हुई है। वह नीर भरी दुःख की वदली हैं। नारी-सौन्दर्य के प्रति इन सभी कवियों की दृष्टि बड़ी पवित्र रही है। मेरी दृष्टि में यह समस्त छायावादी कविता की विशेषता है। नारी-सौन्दर्य का वर्णन इन कवियों ने सूक्ष्म, कोमल और हल्की रेखाओं से किया है।

प्रकृति और कविता

सौन्दर्य-भावना तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के विश्लेषण में आलोचकों ने उसी लीक को अपनाया है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति-वर्णन के विवेचन में इस प्रकार के आलोचकों में आलम्वन और उद्दीपन तक ही अपनी दृष्टि को सीमित कर लिया है। इससे वे प्रकृति वर्णन को उसकी समग्रता में नहीं देख पाये हैं। यह ठीक है कि टुकड़ों में अपना सौन्दर्य है, पर उसकी शोभा तो उसकी समग्रता में ही निहित है। बड़े विस्मय की वात यह है कि नवीनता और आधुनिकता की 'टोन' में वोलने वाले आलोचक भी उसी परिपाटी से इसकी परीक्षा-समीक्षा करने लगते हैं। पर वास्तव में यह 'टोन' प्रत्येक कवि का अलग होता है क्योंकि नैसर्गिक जीवन की अदम्य आकांक्षा कवि को उस प्रवृत्ति की ओर ले जाती है जहां पर लोक-वन्धन नहीं होते हैं। प्रसाद जव अपने नाविक से निर्जन में, कोलाहल से दूर जाने की वात कहते हैं तो उनका उद्देश्य केवल प्रेम-कहानी सुनना होता है। वस्तुतः प्रकृति-वर्णन को इन टुकड़ों में न देखकर समग्रता में देखना चाहिए, जिसमें कवि की वैयक्तिकता, कल्पना, विस्मय और रहस्य आदि सभी कुछ समाहित होता है। पंत की 'एक तारा' निराला की 'संध्या सुन्दरी' कविताओं को जव अलग करके देखते है तो रीतिवद्ध आलोचकों और पाठकों को ही सन्तोष होता है, पर उनके मूल में कवि का जीवन दर्शन व्यक्त होता है। उनकी रहस्यमयी और विस्मयात्मक अभिव्यक्ति के भी दर्शन होते है। इन कवियों को शुद्ध प्रकृति-वर्णन इतना प्रिय नहीं रहा है। लगता ये है

१. परिमल—वहू, पृ० १६१

इसके माध्यम से कुछ पाना चाहते हैं। पंत की निम्न पंक्तियाँ आध्यात्मिक सत्य की झाँकी प्रस्तुत करती हैं—

निराकार तम मानो सहसा
ज्योतिपुंज में हो साकार
बदल गया द्रुत जगज्वाल में
धरकर नाम रूप नाना[1]

प्रकृति और प्रतीक

पंत की 'एकतारा' कविता और निराला की अधिकांश कविताएँ आध्यात्मिक वातावरण प्रस्तुत करती हैं। निराला की 'तरंगों के प्रति' विशेष ध्यान देने योग्य रचना है। प्रकृति वर्णन के साथ-साथ जो रहस्य-दर्शन निराला में मिलता है वैसा घुला-मिला वर्णन न तो प्रसाद दे सके हैं और न पंत ही। निराला का व्यक्तित्व निर्लिप्त भाव का व्यक्तित्व है जो न प्रसाद का है और पंत का तो बिल्कुल ही नहीं है। निराला की कविता में रहस्यात्मकता प्रकृति-दर्शन के साथ पूरी तरह घुल-मिल गई है, जिससे उसमें एक अपूर्व माधुर्य आ गया है। पंत ने प्रकृति को समझाने के लिए रहस्य का आश्रय खोजा है। इसी कारण उनकी प्रकृतिपरक रचनाओं में रहस्य और दर्शन का भाव पूर्णरूपेण संयुक्त नहीं हो पाया है। प्रसाद की प्रकृतिपरक कविताएँ भी रहस्य और दर्शन की मिली-जुली भूमिका पर फिट नहीं बैठती हैं क्योंकि वहां प्रकृति का शुद्ध और उद्दीपन रूप ही प्रमुख है। महादेवी की कविताओं में जो प्रकृति रूप दिखाई देता है उसमें जीवन की निराशा, विशाद और पीड़ा को ही साकार किया गया है। 'मैं बनी मधुमास आली', 'जीवन विरह का जलजात' और 'वसन्तरजनी' कुछ ऐसी ही कविताएँ हैं जिनमें विषादमय प्रकृति का चित्रण है। कवयित्री कहती हैं—

अश्रु के मधुकण लुटाता आ यहां मधुमास;
अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात।......[1]

स्पष्ट है कि प्रकृति के विविध रूप निराला की कविता में जितनी व्यापकता से गुम्फित हैं उतनी व्यापक परिधि महादेवी, प्रसाद में नहीं है। निराला की प्रकृति सम्बन्धी कविताएं हिन्दी में अकेली हैं। उत्फुल्ल, करुण, अवसादपूर्ण और तन्मय व्यक्तित्व की ऐसी छटा अन्यत्र दुर्लभ है। इतना ही नहीं, कवि प्रकृति के तादात्म्य के साथ अपने चारों ओर के संसार को भी नहीं भूला है, जिसमें एक ओर उदात्तता है तो दूसरी ओर असहायता। उनकी 'बादल राग' की कविताओं में प्रकृति तटस्थ नहीं है। वह तो कवि के अन्तराल में निहित सम्पूर्ण सुख-दुःख राग-विराग, क्रोध, मोह और ममत्व को प्रतिबिम्बित करने वाली शक्ति है। वस्तुतः तटस्थ और

१. पल्लविनी, पंत, पृ० २३

१. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ० १६

सौन्दर्यमयी प्रकृति में अपने सुख-दुःख की छाया का जैसा गुम्फन निराला कर सके हैं वैसा तो उसी रूप में रवीन्द्र में भी नहीं मिलता है। 'तरंगों के प्रति' कविता में वे कहते हैं—

१. भाषा में तुम पिरो रही हो शब्द तोलकर
किसका यह अभिनन्दन होगा आज ?[१]

२. वसन्त आया
किसलय-वसना नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय-उरतरु-पतिका[२]

और संध्या सुन्दरी में—

सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह कितने मीठे सपने।
अर्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती वह लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कण्ठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग।[३]

प्रकृति के साथ यह तादात्म्य और साहचर्य भाव निराला की कविताओं में सर्वत्र व्याप्त है।

प्रेम और वेदना

निराला को जब हम उसके समकालीन कवियों से जोड़कर देखते हैं तो एक प्रवृत्ति और है जो इन छायावादी कवियों में बड़ी गहराई से पाई जाती है और वह है वेदना—जिसका आधार, करुणा और सामाजिक जीवन है। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी चारों की कविताओं में प्रेम का स्वरूप और उससे उत्पन्न वेदना (पीड़ा) का स्वरूप स्पष्ट लक्षित होता है। यह प्रेम कहीं स्वच्छन्द, कहीं विचित्र, कहीं पर अलौकिक और कहीं अयथार्थ भी है। प्रसाद के 'झरना' से लेकर 'कामायनी' तक में जो प्रेम का स्वरूप है, उसमें एक ओर भोगवादिता के प्रति आग्रह है तो दूसरी ओर रहस्यात्मक प्रवृत्ति भी स्पष्टतः लक्षित होती है। निम्न पंक्तियों में प्रेम का शारीरिक रूप स्पष्ट है—

तुम्हारा शीतल सुख-परिरम्भ,
मिलेगा और न मुझे कहीं
विश्वभर का भी हो व्यवधान,
आज वह बाल बराबर नहीं।[४]

---

१. परिमल—तरंगों के प्रति, पृ० ८१

२. गीतिका—गीत संख्या, ३

३. परिमल—संध्या सुन्दरी, पृ० १३६-१३७

४. झरना, प्रसाद, पृ० ४८

'इन्दु' में प्रकाशित प्रसाद जी की प्रेम के सम्बन्ध में एक गजल को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने द्विवेदी-युग में ही अपनी प्रेम-भावना को स्वच्छन्दता का बाना पहिना दिया था। आगे 'आँसू' में जो प्रेम का स्वरूप है उसमें स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण हुआ है। आँसू में 'परिरम्भ' 'कुम्भ की मदिरा', 'निश्वास मलय के झोंके' जैसी पंक्तियों में निर्बाध भोग की भावना ही प्रधान है। 'कामायनी' में प्रेम एक सिद्धान्त बन कर आया है। वहाँ पर काम भाव को बड़ी उदात्तता और गरिमा प्रदान करके 'काम मंगल से मंडित श्रेय सर्ग इच्छा का है परिणाम' कहा गया है। प्रसाद के प्रेम में जो व्यक्तिवादी तत्व आगए थे उनमें दुःखवाद और भोगवाद भी साथ-साथ चलता है। भोग के प्रति एक संकोच, एक लज्जा के साथ सूक्ष्म आसक्ति सर्वत्र मिलती है। पर कामायनी तक पहुंचते-पहुंचते उनकी व्यक्तिवादिता स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों में से होकर आध्यात्मिक आनन्द की ओर उन्मुख दीखती है। पंतजी की प्रेमभावना भी उनके चिन्तन के साथ धीरे-धीरे विकास पथ को पा सकी है। शारीरिक वर्णन को महत्त्व देते हुए भी वे मानसिक प्रेम की भूमिकाओं में अपने को लीन कर देते हैं। वे कहते हैं—

'अनिल सा लोक-लोक में
हर्ष में और शोक में
कहां नहीं है प्रेम सांस सा सबके उर में'[1]

प्रम की यह भावना पंत में उतनी व्यापक पीठिका पर प्रतिष्ठित है, पर 'ग्रन्थि' में वे अपनी प्रेमिका के प्रणय से वंचित होने की स्पष्ट कथा भी कहते हैं। पंत का प्रेम आदर्शवादी न होकर लौकिक है। 'वीणा' में यही प्रेम प्रकृति प्रेम के रूप में चित्रित हुआ है। पल्लव', 'आंसू' और 'उच्छवास' जैसी रचनाओं में पुरानी उद्दीपन-पद्धति को ही अपनाकर विरह का वर्णन किया गया है, जिसमें प्रसाद की तरह 'वेदना की विवृत्ति' अधिक हुई है। पंतजी की प्रेम भावना में रीतिकालीन प्रेम की अशिष्टता के प्रति ही विद्रोह अधिक है। अतः पंतजी का प्रेम चित्रण सामन्तवादी मान्यताओं के विरुद्ध पूँजीवादी व्यवस्था के अनुरूप अधिक है। सामन्तवादिता के विरोध में इन्होंने प्रेम की स्वतन्त्र भूमिका पर देखा है जिसमें स्वतन्त्रता के साथ साथ गरिमा और स्वाभिमान है। वैसे द्विवेदी युग के विरोध में आवाज उठाने तथा मनोविज्ञान के दमित कामवासना के सिद्धान्त के अनुसार मिलन और सम्भोग को स्वाभाविक सिद्ध करने के प्रयत्न में कहीं-कहीं चित्र उत्तेजक भी हो गये हैं—

'तुम मुग्ध थी, अति भाव प्रवण,
उकसे थे अंबियों से उरोज,
चंचल, प्रगल्भ, हंसमुख, उदार,
मैं सलज,—तुम्हें था रहा खोज।'[2]

---

१. पल्लव—'स्नेह' से
२. पल्लविनी, पंत, पृ० २४४

महादेवी प्रेम के क्षेत्र में उसकी असफलता का दामन पकड़कर रहस्यवादी पगडंडियों में घूम-घूमकर 'मैं नीर भरी दुःख की बदली' कहकर चिल्लाती फिरती हैं। उनके प्रेम में प्रेमी के प्रति आसक्ति भाव अधिक है—'मुस्काता संकेत भरा नभ अलि, क्या प्रिय आने वाले हैं' 'सुन प्रिय की पदचाप हो गई पुलकित यह अवनी' जैसी पंक्तियों में प्रेम का लौकिक रूप ही उभर सका है। वस्तुतः इसके आधार पर ही उन्हें कोई रहस्यवादी कहे तो कहे। वे तो स्पष्ट कहती हैं—

"प्रियतम को भाता तम के परदे में आना
नभ की दीपावलियों तुम सब क्षण भर को बुझ जाना"[1]

इन पंक्तियों में अलौकिकता का तो हल्का-सा आवरण मात्र है। वास्तव में तो महादेवी का प्रेम सर्वथा लौकिक भूमि पर प्रतिष्ठित है। निराला की प्रेमपरक रचनाओं में 'जुही की कली' अधिक प्रसिद्ध है जिसमें रीतिकालीन स्थूल सौन्दर्य और प्रेम से हटकर सूक्ष्म चित्रण है और दूसरे छोर पर उसका सौन्दर्य अनन्त का अंचल भी स्पर्श करता दीखता है। निराला ने तो इस कविता में मधुर मिलन के चित्र में ही 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की ध्वनि सुनी थी। वे कहते हैं—"अभी-अभी हिन्दी साहित्य सम्मेलन में एक नेता ने उसे साहित्य कहा है जो मानव को उठाता हो। यहाँ 'जुही की कली' में जो कला है वह ऐसी है या नहीं देख लीजिए, तमसो मा ज्योतिर्गमय की काव्य में उतारी हुई तस्वीर है क्योंकि मन के अन्धकार के बाद है जागरण, आत्म-परिचय, प्रिय साक्षात्कार, मन का प्रकाश···कली सोते से जगी हुई···प्रिय से मिली हुई···खिली हुई पूर्ण मुक्ति के रूप में···

निराला की प्रेमिका साधारण प्रेमिका नहीं है, वह विश्वव्यापी प्रेमिका है। वह तो संध्या में, तरंगों में, यमुना में, पुष्पों में, कलियों में अपना रूप बिखेरती हुई कवि को मुग्ध करती है। प्रसाद के काव्य में जो सौन्दर्य है वह सत्य और शिव को उतना ध्वनित नहीं करता जितना निराला का करता है। प्रसाद के काव्य में सूफी कवियों की सी मस्ती और सरसता अधिक है जबकि निराला में उदात्तता और व्यापकता है। डा० विश्वम्भर उपाध्याय का कथन ठीक ही प्रतीत होता है कि "निराला के प्रेम में मस्ती उतनी नहीं जितना प्रकाश है। मस्ती और खुमार प्रसादजी में अधिक है, रूप को देखकर भीतर ही भीतर भुनभुन करने की प्रवृत्ति उनमें अधिक है। निराला उस रूप के अन्तर में और पारस की तरह चारों ओर विस्तृत प्रकाश को एकत्र करते हैं। यही कारण है कि पंत और प्रसाद में रूप का सम्मोहन अधिक है। निराला में यह वशीकरण नहीं है, हाँ उदात्तीकरण है। मिलन वेला में कवि संयोग सुख के प्रति स्पृहा नहीं जगाता, वरन् प्रेम को अरूप बना देता है—

प्रिय यामिनी जागी।
अलस पंकज-दृग अरुण-मुख-तरुण अनुरागी।

---

१. नीहार, महादेवी वर्मा

हेर उर-पट, फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मंद मराल,
गेह में प्रिय-स्नेह की जय-माल,
वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में तागी।[1]

निराला के प्रेम में रूप और स्नेह की महिमा है, पर वह रूप और प्रेम ऐसा है जो वासना से दूर शुचिता के साथ चित्रित है। इसी कारण उनका प्रेम मन को चंचलता की ओर नहीं ले जाता है। वस्तुतः निराला का प्रेम पवित्रता का पावन मंत्र है। उन्होंने अपने काव्य में प्रेम और सौन्दर्य को अतीन्द्रिय भूमिकाओं पर पहुंचा दिया है, रूप को अरूप में, ससीम को असीम में, वासना को ज्ञानपावक में, नारी को शक्ति में, लघु को विराट् में, व्यष्टि हृदय को समष्टि चेतना के अम्बुधि में परिवर्तित कर दिया है। निराला के चित्रों में उस रंगीनी का अभाव है जो पंत में मिलती है। निराला जी आनन्द की सार्वत्रिक खोज और अभेद भाव से इन्द्रियों की परितृप्ति का पथ स्वीकार करते हुए भी मन की सात्विक प्रेरणाओं से अधिक परिचालित हुए हैं। प्रसाद के विषय में शुक्ल जी ने लिखा है कि 'नियतिवाद' 'दुःखवाद' का विषम सा स्वर भी सुनाई पड़ता है। इस चेतना को दूर हटाकर मद, तंडा, स्वप्न और असंज्ञा की दशा का आह्वान रहस्यवाद की स्वीकृत विधि है। इस विधि का पालन आँसू से लेकर कामायनी तक में हुआ है। प्रसाद कहते हैं—

चिर दग्ध दुःखी वसुधा आलोक माँगती तब भी।
तुम कुट्टिम बरसा दो कन-कन, यह पगली सोए अब भी।[2]

और निराला भी कहते हैं—

मैं अकेला
देखता हूं आ रही मेरे दिवस की सांध्य वेला।[3]

पंत जी की कविता में भी इस प्रकार के, एक नहीं अनेक, उदाहरण भरे हैं, जिनमें वेदना व्यक्त हुई है। इनकी वेदना का प्रारम्भिक रूप प्रेम से सम्बन्धित दिखाई देता है। आगे की कुछ कविताओं में उन्होंने वेदना का सामन्यीकृत रूप भी प्रस्तुत किया है। 'परिवर्तन' नामक कविता में कवि जगत् के दुःख की ओर भी आकर्पित हुआ है और कह उठा है—'एकाकीपन का अन्धकार, दुःसह है इसका मूक भार, इसके विषाद का रे न पार" पर वास्तविकता यह है कि पंत और प्रसाद मूलतः वैयक्तिक संवेदनाओं के कवि हैं और साथ ही प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। अतः इनकी वेदना वैयक्तिक अधिक है, सामाजिक कम है। महादेवी जी की वेदना का जो स्वर फूटा है वह कहीं तो अज्ञात प्रियतम की ओर संकेत करता है और कहीं

१. गीतिका—गीत संख्या २
२. आंसू (प्रसाद), पृ० ५५
३. अणिमा—मैं अकेला, पृ० २०

वैयक्तिकता की ओर। यह भी माना जा सकता है कि उनकी वेदना अज्ञान के विषय में है। पर यह भी मानना पड़ेगा कि उनकी वेदना में वह व्यापकता और सामाजिकता नहीं जो निराला की वेदना में है। वे कहती हैं—

मैं सरित विकल तेरी समाधि की सिद्धि अकल
चिर निद्रा में सपने का पल ले चली सांस में लय गौरव।

पर निराला की वेदना तो ऐसी वेदना है जो समाज की गहराई से निकलती है और निकलकर फैल जाती है। 'तरंगों के प्रति' कविता में कवि दग्ध चिन्ता के हाहाकार और अवलाओं की करुण पुकार को भी सुनता है। इतना ही नहीं, वे इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती हुई नारी को भी देखते हैं और 'अधिवास' में वे मनुष्य मात्र के दुःख की ओर भी संकेत करते हैं—

मैंने "मैं-शैली अपनाई,
देखा दुखी एक निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे,
झट उमड़ वेदना आई।[1]

निराला यदि कहीं वेदना का चित्रण भी करते हैं तो वहाँ समाज के संघर्ष की भूमिका में ही वह व्यक्त होता है और इतना ही नहीं, उनकी हार या लाचारी में भी एक प्रकार की शक्ति निहित है जो उनके समकालीन अन्य कवियों में नहीं है।

दर्शन

जहाँ तक इन कवियों के दर्शन का प्रश्न है, ये कभी रहस्यवादी, कभी अद्वैतवादी और कभी बौद्ध दर्शन, शैव दर्शन, अरविन्द दर्शन से प्रभावित दीखते हैं। प्रसाद के काव्य में शैव दर्शन, बौद्ध दर्शन और अद्वैत दर्शन के मिले-जुले रूप के चित्र हैं। वे मूलतः आनन्दवादी, समरसतावादी हैं जिसका प्रतिपादन उनके प्रसिद्ध काव्य 'कामायनी' में देखा जा सकता है। वे कहते हैं—

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था।[2]

और वैसे कहीं-कहीं रहस्यवादी, अद्वैतवादी भावनाओं का भी पल्लवन हुआ है, पर उनके काव्य में इन सब दर्शनों ने आनन्दवाद की भूमि ही तैयार की है। पंत के काव्य में एक ओर अरविन्द का प्रभाव है तो दूसरी ओर मार्क्सवाद का। उनके काव्य को पढ़कर तो ऐसा लगता है जैसे पहले वे दर्शन को पढ़ते हैं और फिर उसको

१. परिमल—अधिवास, पृ० १२४
२. कामायनी—आनंद सर्ग, पृ० २६४

काव्य में ढालने का प्रयास करते हैं। इससे दर्शन और कविता दोनों दो छोरों पर खड़ी दिखाई देती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि वे अपनी कविता में दर्शन को पचा नहीं पाए हैं। वे प्रगतिवादी बनकर कहते हैं—

राजनीति का प्रश्न नहीं रे आज जगत् के सम्मुख
आज वृहत् सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित।[1]

इसी प्रकार की भावनाएँ अनेक स्थलों पर व्यक्त हुई हैं। दर्शनशास्त्र और उपनिषदों ने कवि के हृदय में निराली उदासीनता भरी है। इसीलिये वे कहते हैं—

खोलता इधर जन्य लोचन
मूँदता उधर मृत्य क्षण क्षण
अभी उत्सव, हास, हुलास
अभी अवसाद, अश्रु, उच्छ्वास।[2]

स्पष्ट है पंत को अनेक दर्शनों ने प्रभावित किया है, पर उनके काव्य में दर्शन और कविता अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं। प्रसाद के काव्य में दर्शन और कविता मिले-जुले इसलिए दिखाई पड़ते हैं कि वहाँ महाकाव्य में दर्शन जहाँ तहाँ फैलकर खप गया है। महादेवी का दर्शन, यदि कोई है तो वह, रहस्यवाद ही है। यह उनकी कृतियों से स्पष्ट है; पर निराला मूल रूप में किसी दर्शन को लेकर नहीं चले हैं। हाँ, उनकी कविता में जीवन और युग-दर्शन की अजस्र धारा अवश्य दिखाई देती है। जैसे कबीर की कविता में हिन्दू-मुसलमान की एकता प्रतिध्वनित है वैसे ही निराला की कविता में। वस्तुतः आज के युग में निराला की दृष्टि नवीन मानवतावादी दर्शन की ओर झुकी है। मानव समता को, जाति-पाँति की कृत्रिमता को इनकी कविता ने वाणी दी है—

तोल तू उच्च नीच समतोल
एक तरु के से सुमन अमोल
सरल लहरों में एक उठान
उठा माँ, तंत्री के से गान।

और आगे की कविता में विश्व-जीवन की विविधता एकता में खो गई है। जब निराला समाजवादी दर्शन की ओर झुकते हैं तो वर्गहीन समाज की कल्पना करते हैं। बड़े-बड़े महलों, मिलों तथा जमींदारियों पर व्यक्ति के अधिकार का विरोध कर उसे देश की सम्पत्ति मानते हैं। इस मानवतावादी दृष्टि के अतिरिक्त निराला में वह दृष्टि भी विद्यमान है जो दर्शन का अन्तरंग प्रश्न है। योगियों ने जैसे समस्त सृष्टि को घट के भीतर देख बाहर उसकी खोज व्यर्थ बतलाई है, वैसे ही निराला कहते हैं—

---

१. ग्राम्या—पंत—संस्कृति का प्रश्न, पृ० ८६
२. आधुनिक कवि—पंत—अनित्य-जग, पृ० २७

पास ही रे, हीरे की खान
खोजता कहां और नादान ?[1]

अव्यक्त रूप में अपने कार्यों के आरोप का चित्र इन पंक्तियों में दृष्टव्य है—

'तुम्हीं गाती हो अपना गान
व्यर्थ में पाता हूं सम्मान ।'[2]

इनकी अधिकांश कविताओं की समाप्ति भी पंत की कुछ कविताओं की भांति दार्शनिक ढंग से हुई है, पर यह परिणति ऊपर से थोपी हुई नहीं है। यह तो तारतमिक रूप से सम्पूर्ण कविता में व्याप्त होती है, जिससे कविता का उत्कर्ष बढ़ जाता है—

वह जीवन की प्रबल उमंग
जा रही मैं मिलने के लिए पार कर सीमा
प्रियतम असीम के संग[3]

इनकी कविताओं में 'तुम और मैं' एक ऐसी कविता है जहाँ पर कवि अद्वैतवादी स्वर में बोलता है; पर वस्तुतः निराला का दर्शन मानवतावादी दर्शन है जिसमें सामाजिकता का शत-प्रतिशत हाथ है। वे वर्तमान युग के क्रान्तिकारी सन्देशवाहक कवि हैं; विरोधी स्थितियों में भी कवि का सन्तुलन ज्यों का त्यों बना हुआ है। इस दृष्टि से निराला, पंत, प्रसाद और महादेवी से आगे हैं।-प्रसाद और महादेवी पूर्णतः छायावादी हैं पर निराला और पंत में प्रगतिवादी दृष्टिकोण भी मिलता है। पंत तो आगे चलकर प्रगतिवादी हुए हैं, पर निराला का प्रगतिशील रूप हमें उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में ही मिल जाता है। निराला समाज से कभी अलग नहीं हुए हैं। उनका काव्य युग-विमुख कभी नहीं रहा है। युग-जीवन के कवि सामाजिक समस्याओं के प्रति उदासीन नहीं होते हैं। युग का वास्तविक चित्र उतारने के लिए निराला ने जन जीवन के साथ गहरा सम्बन्ध ही स्थापित नहीं किया है, अपितु उनकी कविता में समाज के साथ तादात्म्य की स्थिति भी दीखती है। वे दूर खड़े दर्शक-मात्र ही नही हैं, उनका काव्य सच्चे अर्थों में सामाजिक साहित्य है। प्रसाद, पंत, महादेवी का काव्य सामाजिकता की सूचना भर देता है। सूचना देना अलग बात है और उसको चित्रित कर समाज से तादात्म्य स्थापित करना अलग बात है। इस सामाजिक चेतनाकाव्य को प्रगतिशील बनाया है। इसी भावना ने राष्ट्रीय नव जागरण की नयी रूप-रेखा भी निराला को दी है। युग के समक्ष उठने वाली नैतिक और सांस्कृतिक समस्याओं ने निराला को स्पर्श किया है जिससे उनकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति काव्य में वे कर पाये हैं।

---

१. गीतिका—गीत संख्या २५
२. परिमल—धारा, पृ० १४६
३. गीतिका—गीत ४४

शिल्पविधान

यदि शिल्प-विधान की दृष्टि से हम इन चारों कवियों को देखें तो स्पष्ट ही विदित होता है कि इन्होंने शिल्प के क्षेत्र में अनेक नये प्रयोग किये हैं। भाषा, शब्द चयन, छंद, अलंकार, प्रतीक अपनाया है। पंत, प्रसाद ने भाषा में एक कोमलता, स्निग्धता भरी है तो निराला ने कोमलता के साथ २ ओज भी। जहां तक पंत की भाषा का प्रश्न है, यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि वे अन्यतम शिल्पी हैं। उनके अनुसार भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है, यह विश्व की हृत्तंत्री की झंकार है, जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है। वस्तुतः पंत का यह वक्तव्य उनकी भाषा पर पूर्णतः लागू होता है। उनका प्रत्येक शब्द नादमय है, चित्रमय है। भाषा के माधुर्य गुण को पंत ने संवारा है। प्रसाद और ओज भी यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। वैसे माधुर्य पंत और प्रसाद दोनों की कविता में आदि से अन्त तक व्याप्त है। निराला की भाषा में विराटता और माधुर्य के विपरीत ओज गुण भी व्यापक परिमाण में मिलता है। पंत की 'परिवर्तन' कविता में भी हम इसको देख सकते हैं। प्रसाद गुण इनकी कविता में प्रायः नहीं के बराबर है। पंत का शब्द चयन अन्य कवियों की अपेक्षा बड़ा कुशल है। उन्होंने छोटे २ शब्दों में अन्तर किया है। वे कहते हैं—श्वसन की सनसनाहट छिप नहीं सकती है। 'पवन' शब्द मुझे ऐसा लगता है जैसे हवा रुक गई हो, 'य' और 'न' की दीवारों से घिर जाता है, 'समीर' लहराता हुआ बहता है, शब्द-चयन के क्षेत्र में निराला और प्रसाद भी पीछे नहीं हैं। निम्न पंक्तियों में जहाँ निराला शब्दों के माध्यम से वातावरण का चित्र खींच देते हैं—

(i) फिर सुना—हंस रहा अट्टहास रावण खलखल।[1]
(ii) झर झर झर निर्झर—गिरि-सर में,
घर, मरु, तरु-मर्मर सागर में।[2]

वहाँ पन्त की चित्रमयता भी किसी भांति कम नहीं है। उन्होने निम्न-पंक्तियों में युवती की गति को छोटे छोटे शब्दों में बांध दिया है। उनका निम्न पंक्तियों में शब्द-चयन बड़ा मार्मिक है, अपने आप एक चित्र सा बन गया है—

सरकाती—पट,
खिसकाती—लट,—
शरमाती झट
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट।[3]

---

१. अनामिका—राम की शक्ति-पूजा, पृ० १५२
२. परिमल—बादल राग, पृ० १७५
३. ग्राम्या, ग्राम युवती, पृ० १७

महादेवी में यह चित्रात्मकता इतनी प्रभूत मात्रा में विद्यमान नहीं। हां, एक बात है कि उन्होंने भी अपनी वेदनापरक कविताओं में सार्थक शब्द चयन किया है जिससे कवयित्री की भावनाएं शब्दों में बंधकर साकार हो गई हैं। निराला, प्रसाद, पंत की भाषा में जहां एक ओर संस्कृत-गर्भित शब्दावली का प्रयोग है वहां दूसरी ओर सरल सरस शब्दावली है। प्रसाद ने संस्कृत के शब्दों की परम्परा को अत्यधिक रूप में बनाए रखने का भरसक प्रयत्न किया है, फिर भी वे अपने शैलीगत नए प्रयोग से भाषा को वंचित नहीं रख सके हैं। पंत में भी यह संस्कृत-शब्दावली आसानी से अनेक स्थानों पर देखी जा सकती है। निरालाकृत 'अनामिका' और 'तुलसीदास' में भी संस्कृत शब्दों का समृद्ध कोश व्याप्त है—

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ् मंडल[1]

इसी प्रकार 'राम की शक्ति पूजा' की इन पक्तियों में जहां एक ओर संस्कृत शब्दावली का प्रयोग है तो सामासिकता भी स्पष्ट है—

आज का, तीक्ष्ण-सर-विधृत-क्षिप्र-कर, वेग प्रखर
शतशेलसंवरणशील, नीलनभ गर्ज्जित स्वर,
प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह-भेद-कौशल-समूह,—
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह,—क्रुद्ध कपि विषम-हूह ।[2]

प्रसाद, पंत में भाषा का सरल रूप भी चित्रित है। प्रसाद की 'कामायनी' प्रसाद, पंत में भाषा का लाक्षणिक प्रयोग हुआ है वहां दूसरी ओर भाषा का सरल और अभिधात्मक रूप भी है। पंत की कविता में जो भाषा है वह सरल तो है पर वहां भी वह शब्द में चित्र, चित्र में झंकार का रूप प्रस्तुत करती है। महादेवी की भाषा में उत्कृष्ट चित्रमयता, गठी हुई प्रतीक योजना और उपयुक्त शब्द-चयन अपनी गरिमा के साथ उपस्थित हैं—

'प्रिय सांध्य गगन, मेरा जीवन।
वह क्षितिज बना धुंधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया-सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रंगीले घन
साधों का आज सुनहलापन,
घिरता विषाद का तिमिर गहन

१. तुलसीदास, पृ० १
२. अनामिका—राम की शक्ति-पूजा, पृ० १४८

संध्या का नभ से मूक मिलन—
यह अश्रुमती हंसती चितवन।'[1]

निराला की भाषा में इन समानताओं के साथ कुछ विभिन्नताएँ भी हैं। उन्होंने भाषा को तोड़ा मरोड़ा है, उसका नया संस्कार किया है। वैसे चित्रमयता तो निराला में कम नहीं है और वह 'दिवसावसान का समय, मेघमय आसमान से उतर रही है, चुपचाप संध्या सुन्दरी परी-सी धीरे-धीरे' जैसी पंक्तियों में देखी जा सकती है। निराला ने उर्दू, फारसी, बंगला, अरबी आदि के शब्द भी कविता में अपनाए हैं, जो इतनी व्यापक मात्रा में इनके समकालीन कवियों में नहीं मिलते है। 'अनामिका' और 'परिमल' में 'रंजोगम', 'जानदार', 'हरगिज़', 'दगाबाज', 'मर्दानगी', 'आसमान' इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसी रचना-काल में अंग्रेजी के शब्दों को भी अपना लिया गया है। इसका प्रमुख कारण कवि के मन की क्षुब्ध दशा है जिससे व्यंग्य के समय कवि इस प्रकार के प्रयोग करता है। निम्न पंक्तियों में एक ओर संस्कृत से अनुप्राणित शब्दों का मेल है तो दूसरी ओर उर्दू, अंग्रेजी भाषा का प्रयोग—

जलद जहां, जीवनद, जिलाया
जबकि जगज्जीवन्मृत को।
तपन-ताप-संतप्त तृषातुर
तरुण-तमाल-तलाश्रित को।
वहां होशियारों ने तुमको
खूब पढ़ाया, बहकाया,
'द' जोड़ ग्रेड बढ़ाया, तुम पर
जाल फूट का फ़ैलाया।[2]

स्पष्ट है कि इन कवियों ने भाषा को चित्रमय रूप देकर एक ओर सजाया-सँवारा है तो दूसरी ओर कोमलता के भावों की पोशाक उसे पहनाई है। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी चारों ही की भाषा में सुन्दर शब्द-चयन, माधुर्य और ओज का रूप, संस्कृत मिश्रित शब्द, सरल शब्द और लाक्षणिक-ध्वन्यात्मक प्रयोग मिलते हैं। निराला में प्रसाद की अपेक्षा कुछ अधिक मुहावरेदारी और पंत एवं महादेवी की अपेक्षा कुछ अधिक सरलता मिलती है। पर कहीं-कहीं बौद्धिकता और शब्दों की तोड़-मरोड़ के कारण अस्पष्टता और दुरूहता भी मिलती है।

अभिव्यंजना-पद्धति का दूसरा उपादान छन्द हैं। छन्द की दृष्टि से प्रसाद और महादेवी का काव्य इतना विवेचनीय नहीं है जितना पंत और निराला का। छन्द कविता में आवश्यक तत्व हैं। गेय छन्द के अभाव में लिखी गई कविता को

१. यामा, पृ० १
२. परिमल, जलद के प्रति, पृ० ८२-८३

कुछ विद्वान् कविता ही नहीं मानते हैं। छन्दहीन कविता गद्य-सी लगने लगती है। सचाई यह है कि छन्द के अभाव में कविता यदि किसी को गद्यवत् लगती है तो यह भी मानना पड़ेगा कि छन्द के बंधन में बँधी कविता में सरसता हो ही, यह आवश्यक नहीं है। प्रसाद और महादेवी की कविताओं में तुक है, गेयता है। प्रसाद और महादेवी की सबसे बड़ी विशेषता यही है। अनेक बार भाव की दुरूहता और अस्पष्टता के होते हुए भी हम प्रसाद की 'कामायनी' या 'आँसू' कृति को पढ़ते जाते हैं। प्रसाद ने परम्परागत पद्धति पर ही काव्य को विकसित किया है, पर पंत और निराला ने गेयता के साथ या परम्परागत छन्द के साथ-साथ मुक्त छन्द को भी अपनाया है। पंत ने अतुकांत कविता लिखी है। कहीं-कहीं उनकी अतुकांत कविताएँ गद्य भी लगती हैं—

जब प्रणय का प्रथम-परिचय मूकता
दे चुकी थी हृदय को, तब यत्न से
बैठकर मैंने निकट ही, शान्त हो,
विनत-वाणी में प्रिया से यों कहा—

नयी भाषा, नए शब्द के साथ पंत ने भावानुकूल नए छन्द भी रच लिए हैं। भाव-क्षिप्रता में छन्द-क्षिप्रता भी द्रष्टव्य है—

'प्रेम याचक
जब उसे ताकता है इकटक,
उल्लसित,
चकित,
वह लेती मूंद पलक पट।'[2]

और

जल छलकाती,
रस बरसाती,
बल खाती वह घर को जाती,
सिर पर घर
उर पर घर पट।[3]

जो हो सो हो, इतना तो मानना पड़ेगा कि छन्दों के क्षेत्र में निराला ने बड़ी क्रान्ति की है। 'परिमल' की भूमिका में वे लिखते हैं—'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना'[4] यही कारण है

१. अंथि, पंत, पृ० ६
२. ग्राम्या, ग्राम युवती, पृ० १७-१८
३. वही, पृ० १८
४. परिमल, भमिका, पृ० १४

कि उन्होंने प्रारम्भिक कविता 'जुही की कली' को छंद के बंधन से मुक्त करके ही साहित्य जगत् के सम्मुख रखा। निराला ने छन्द को तीन भागों में बांटा है—(१) सममात्रिक सान्त्यानुप्रास (२) विषममात्रिक सान्त्यानुप्रास (३) स्वच्छंद छंद। निराला ने मुक्त छन्द या स्वच्छंद छंद पर विशेष बल दिया है। 'परिमल' में सान्त्यानुप्रास कविताएँ हैं, जैसे—

उसससलज्ज ज्योत्स्ना-सुहाग की
फेनिल शय्या पर सुकुमार,
उत्सुक, किस अभिसार निशा में,
गई कौन स्वप्निल पर मार ?[1]

निराला का मुक्त छंद अपने समकालीन सभी कवियों में सफल, गतिमान और ओजस्वी रहा है। उनकी 'अनामिका' और 'परिमल' की मुक्त छंद की रचनाओं को छोड़ भी दिया जाय तो अणिमा में मुक्त छंद का सफल रूप दिखाई देता है—

विक्रम की सहस्राब्दि का स्वर······
आ रही याद
वह उज्जयिनी, वह निरवसाद
प्रतिमा, वह इतिवृत्तात्मक कथा,
वह आर्यधर्म, वह शिरोधार्य वैदिक समता[2]

एक ओर जहाँ वे मुक्त छन्द में सभी बन्धनों को तोड़ते हैं वहाँ दूसरी ओर गीतिका के गीतों में तुक और चरण के बन्धनों को स्वीकार कर गीतों को नया जामा पहनाते हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' और 'तुलसीदास' छन्द-विधान की दृष्टि से निराला की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं जिनमें धारावाहिकता देखते ही बनती है। उन्होंने नए-नए छन्द-विषयक प्रयोग भी किए जैसे 'सॉनेट', 'गजलें', 'ठुमरी', 'कव्वाली' और 'कजली'। 'बेला' में 'ठुमरी', 'गजलें' और 'कव्वालियां' और 'अणिमा' में 'रविदासजी के प्रति' और 'विजयलक्ष्मी पंडित के प्रति' कविताएँ 'सॉनेट' ढंग की हैं। स्पष्ट है कि पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी में छन्द के क्षेत्र में निराला का महत्त्वपूर्ण, सर्वाधिक नवीन प्रवेश है।

पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी चारों ने सौन्दर्य की सृष्टि और काव्य को प्रेषणीय बनाने के लिए नूतन अप्रस्तुत विधान किया है। इन सभी कवियों ने सादृश्य पर अधिक बल दिया है। पंत की सादृश्यप्रियता स्पष्ट ही बड़ी मधुर है। पंत जी अलंकार को काव्य के लिए आवश्यक नहीं मानते हैं, यह बात उनकी 'वाणी मेरी क्या तुझे चाहिए अलंकार' जैसी उक्तियों से स्पष्ट है। पंत का सादृश्य विधान बड़ा मार्मिक है—

---

१. परिमल, यमुना के प्रति, पृ० ४८
२. अणिमा—सहस्राब्दि

(i) खिल उठी रोओं सी तत्काल
पल्लवों की यह पुलकित डाल
(ii) बच्चों के तुतले भय सी
(iii) अरुण कलियों से कोमल घाव
(i) विधुर उर के से मृदु उद्गार[1]

और रूपक की योजना बड़ी भव्य है। इसके लिए इनकी 'नौका विहार', 'गंगा', 'नक्षत्र', 'बादल' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। विशेषण-विपर्यय के कारण इनमें और भी आकर्षण आ गया है। इनके उपमानों में चिन्मयता ने विशेष योग देकर उन्हें आकर्षक बनाया है। सादृश्य-योजना, मूर्त के लिए अमूर्त और अमूर्त के लिए मूर्त का विधान प्रसाद काव्य में अद्वितीय है—

(i) ओ चिन्ता की पहली रेखा
अरी विश्व वन की व्याली[2]
(ii) हे अभाव की चपल बालिके[3]
(iii) मानो हंसी हिमालय की है
फूट चली करती जय गान[4]
(i) 'पहेली सा जीवन' और
(ii) बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल[5]

महादेवी की सादृश्य-योजना भी बड़ी मधुर है—'सिन्धु का उच्छ्वास घन', 'मैं सरित विकल', 'मौन सी साधे', 'अगरु धूम सी सांस', 'धूप सा तन, दीप सी मैं' और 'नीलम की निस्सीम पटी पर तारों के बिखरे सित अक्षर' आदि। इसके साथ ही निराला की सादृश्य-प्रियता भी उल्लेखनीय है। उनकी रचनाओं में पंत जी की तरह विरोध-मूलक अलंकृति नहीं मिलती है। उनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ सादृश्य-विधान के लिए उल्लेखनीय हैं—'वीचि-चितवन', 'मरु-मरीचिका सा ताक रही आकाश', 'हृदय सरोवर का जलजात', 'दिवस स्वप्न सा', 'तुम दिनकर के स्वर किरण जाल में सरसि की मुस्कान' और 'तुम चित्रकार घनपटल श्याम में तड़ित् तूलिका रचना' आदि उल्लेख्य हैं। स्पष्ट है कि इन कवियों ने अलंकारों को प्रयास-पूर्वक नहीं लादा है, जिससे कविता भाराक्रांत हो जाय और भाव दबकर सिसकता रहे। रीतिकालीन कवियों की सी अलंकारों के प्रति आग्रहपूर्ण प्रवृत्ति इन कवियों में नहीं है। इन कवियों ने सौन्दर्य-वर्धन और भाव की प्रेषणीयता के लिए काव्य में अलंकारों को जुटाया है।

---

१. आधुनिक कवि पंत—मौन निमंत्रण, पृ० २२
२. कामायनी—चिन्ता सर्ग, पृ० ५
३. वही; पृ० ५
४. वही,
५. वही, इड़ा सर्ग, पृ० १६६

गीत

आधुनिक युग गीतों का युग रहा है। इस युग में (छायावादी) चार प्रमुख गीतकार हुए हैं। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी। इन गीतकारों में कुछ सीमाएँ ऐसी हैं जहाँ पर इनके गीतों में साम्य दिखाई पड़ता है और कुछ ऐसी हैं जहाँ विभिन्नता भी दीखती है। इन चारों ही कवियो के गीत वेदना के स्वरों में फूट पड़े हैं। वे स्वयं एक विश्व वेदना का अनुभव करते है और इस वेदना में स्वतः ही इन कवियों की वाणी से गीत फूट पड़े है। इसके अतिरिक्त कवि दूसरों के दुःख में इतने तन्मय हो जाते हैं कि उस दुःख को अपना ही दुःख मानकर वेदना का अनुभव करते हुए गीतों का सृजन करते हैं। पंत, प्रसाद के गीत प्रथम कोटि में आते हैं और निराला के गीत द्वितीय कोटि में। पंत, प्रसाद के गीतों में वेदना का पुट वैयक्तिक रूप लेकर आता है। हाँ, कहीं-कहीं प्रसाद विराट की कल्पना करने लगते हैं। प्रसाद के गीतों में जहाँ एक ओर स्थूल प्रेम, शृंगारिकता, मौज, मस्ती और बौद्धिकता है वहाँ पंत के गीत कल्पनापूर्ण एवं शृंगारिक ही अधिक हैं। उनमें ऐन्द्रियता तो है, पर प्रसाद की सी मस्ती और टीस नहीं है। पंत ने जहाँ एक ओर प्रकृति परक, लौकिक प्रेमपरक और आध्यात्मिक गीत लिखे हैं वहाँ दूसरी ओर जीवन-दर्शन-सम्बन्धी भी लिखे हैं। प्रसाद के नाटकों में जो गीत प्रयुक्त हुए हैं वे भी अतीत की स्मृति से युक्त, वेदनापूर्ण, प्रेम और शृंगार परक और राष्ट्रीय विचारों से ओतप्रोत हैं। महादेवी के गीतों में जहाँ वेदना, टीस, दर्द और प्रिय मिलन के लिए छपपटाहट है वहाँ दूसरी ओर अलौकिकता, ईश्वरीय सत्ता की ओर सूक्ष्म संकेत भी विद्यमान है;[1] पर निराला के गीतों में आत्मनिवेदन है। वे एक ओर प्रार्थना-प्रधान, नारी-सौन्दर्य चित्रण एवं प्रकृति-वर्णन-सम्बन्धी हैं तो दूसरी ओर कुछ गीतों में राष्ट्रीयता और दार्शनिकता का पुट विद्यमान है। बहुत से गीत ऐसे हैं जिनमें युग-जीवन साकार हो उठा है। यही इनके गीतों की अन्यतम विशेषता है जो उन्हें अपने समकालीन गीतकारों से अलग कर देती है। इन गीतों में संगीत में काव्य और काव्य में संगीत है। निराला की गीत-सृष्टि हिन्दी की अनमोल निधि है। निराला का विषण्ण, खिन्न मन अवसाद से भर कर प्रार्थना की ओर झुकता है—

> प्रात तव द्वार पर
>
> आया जननि नैश जन्य पथ पार कर'

'अणिमा' के गीतों में विषाद का गहरा भाव है जिनमें निराला का पौरुष थका-सा प्रतीत होता है। 'परिमल', 'अनामिका' और 'गीतिका' के गीतों की सारी वेदना 'अणिमा' में आकर केन्द्रीभूत हो गई है, तभी तो कवि पुकार उठता है—

---

१. गीतिका, पृ० १००

मैं अकेला मैं अकेला,
देखता हूं आरही मेरे गगन की सांध्य वेला

इसी प्रकार उनके प्रकृति-परक गीत. सौन्दर्य-प्रधान गीत भी हैं। वस्तुतः "प्रसाद और निराला ने गीतों को ताल और स्वर में सजाया है" यह उक्ति ठीक है, पर साथ ही यह भी विस्मरणीय नहीं है कि गीतकारों में निराला ही ऐसे गीतकार हैं जिनमें वेदना का भाव, जो गीतों का मूल उद्‌गम है, व्यापक धरातल पर मिलता है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि निराला अपने समकालीन कवियों में एक बड़े स्थान के अधिकारी हैं। वे एक ऐसे क्रान्तिकारी कवि थे जिन्होंने वैयक्तिक अनुभूतियों के स्थान पर सामाजिकता को प्रश्रय दिया। यह सामाजिकता प्रसाद,[२] पंत और महादेवी में नहीं के बराबर है। निराला का काव्य प्रगतिशील तत्वों से युक्त है। उनकी वेदना विश्वजनीन वेदना है। इसी सामाजिकता ने उन्हें सबसे अधिक मानवतावादी बना दिया है। मानवतावाद उनके काव्य का सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख प्रदेय है जिसकी स्थापना उन्होंने प्राचीन रूढ़ियों की भित्ति पर की है। निराला की दूसरी महत्वपूर्ण देन गीत सम्बन्धी है। निराला ने यद्यपि गीत लिखे हैं, फिर भी उनके इन गीतों में जो व्यापकता, विविधता, प्रबंध की सी शैली और सांस्कृतिक चेतना है वह उनके समकालीन कवियों में नहीं है।

निष्कर्ष

आचार्यों ने कविता के तीन तत्व बतलाये हैं—(१) राग तत्व, (२) बुद्धि तत्व और (३) कल्पना तत्व। प्रत्येक कवि का काव्य किसी न किसी तत्व की प्रधानता लेकर चलता है पर साथ ही उसमें अन्तः तत्व भी होते हैं, क्योंकि काव्य का सृजन-सिंचन इन तीनों तत्वों का सम्मिलित परिणाम होता है। इस दृष्टि से इन कवियों को देखें तो स्पष्ट होगा कि प्रसाद के काव्य में राग-तत्व, पंत के काव्य में कल्पना-तत्व और निराला के काव्य में बुद्धि-तत्व की प्रधानता है पर गौण रूप में अन्य तत्व भी आये हैं। काव्य में शिल्प-विधि के अंगों में—छंद, शाब्दिक अलंकार, रूपक और चित्रात्मकता, बुद्धितत्व के प्रधान होने से सबसे अधिक प्रमुख निराला में हैं; पर इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि अन्य दो तत्व निराला में नहीं हैं या प्रसाद में राग-तत्व के अतिरिक्त बुद्धि और कल्पना नहीं है। धनन्जय वर्मा ने लिखा है कि 'निराला में भी उनके रूपक विधान और चित्र निर्माण की क्षमता में कल्पना का सन्निवेश है'—'नर्गिस' की कल्पना 'तुलसीदास' का प्रकृति-वर्णन और 'शक्ति पूजा' में उनकी कल्पना-शक्ति का परिचय मिलता ही है, साथ ही परवर्ती अर्चना', 'अराधना' युग में अथवा भक्ति-परक गीतों में रागात्मिका शक्ति का भी।' वस्तुतः इन तत्वों का समन्वय निराला और प्रसाद में जितनी विविधता लिए हुए है उतनी व्यापक परिधि में पंत और महादेवी में नहीं है, क्योंकि पंत ने कल्पना-तत्व को

२. कवि प्रसाद से तात्पर्य है।

ही उसकी चरम सीमा तक पहुंचाया है और महादेवी ने छायावाद की दार्शनिक भूमि रहस्यवाद में विचरण किया है, कहीं गहरे कहीं उथले रूप में। इसी से यह भी स्पष्ट है कि प्रसाद और निराला युग का नेतृत्व कर सके हैं, पर पंत और महादेवी नहीं और सबसे अधिक स्वच्छन्दतावाद का पूर्ण विस्तार निराला में है, क्योंकि विशदता, व्यापकता, उदारता और प्रसार के क्षेत्रों में निराला ने ही बाजी मारी है। निराला काव्य ने जितने मोड़ लिये है उन सब मोड़ों में—मुक्त छंद से लेकर गीत-सृष्टि तक, महाकाव्यात्मक परिधि, सामाजिक क्षेत्रों में मानवतावादी और जनवादी विचार-धाराओं ने एक नयी राह और नयी दिशा दे दी है।

परिशिष्ट

सहायक ग्रंथ-सूची

(क) आधार ग्रन्थ

क्रम संख्या	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
१.	परिमल	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
२.	अनामिका	,,
३.	गीतिका	,,
४.	तुलसीदास	,,
५.	कुकुरमुत्ता	,,
६.	अणिमा	,,
७.	वेला	,,
८.	नये-पत्ते	,,
९.	अर्चना	,,
१०.	आराधना	,,
११.	गीतगुंज	,,

(ख) सहायक ग्रन्थ

(i) आलोचनात्मक

क्रम संख्या	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
१.	निराला काव्य और व्यक्तित्व	डा० धनन्जय वर्मा
२.	महाकवि निराला : काव्य, कला और कृतियां	विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
३.	क्रान्तिकारी कवि निराला	बच्चनसिंह
४.	निराला का परवर्ती काव्य	रमेशचन्द्र मेहरा
५.	महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रन्थ	जैमिनी बरुआ
६.	कवि निराला और उनका काव्य-साहित्य	गिरीशचन्द्र तिवाड़ी
७.	निराला	डा० रामविलास शर्मा
८.	कवि निराला	रामरतन भटनागर
९.	आधुनिक साहित्य	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
१०.	हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी	,,
११.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१२.	स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य	डा० रामविलास शर्मा

१३. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास — श्री कृष्णलाल
१४. आधुनिक कविता का मूल्यांकन — इन्द्रनाथ मदान
१५. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प — कैलाश वाजपेयी
१६. आधुनिक हिन्दी कविता में छन्द-योजना — डा० पत्तूलाल शुक्ल
१७. आधुनिक हिन्दी-कविता में अलंकार-विधान — डा० जगदीश नारायण
१८. कबीर : एक विवेचन — डा० सरनामसिंह शर्मा
१९. भारतीय दर्शन — सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय और वीरेन्द्र मोहन दत्त
२०. वेदान्त धर्म — स्वामी विवेकानन्द
२१. चयन — सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
२२. प्रबन्ध-पद्म — ,,
२३. रवीन्द्र-कविता-कानन — ,,
२४. मिस्टीसिज्म — ई० अन्डरहिल

(ii) काव्य ग्रन्थ

१. कामायनी — जयशंकर प्रसाद
२. आंसू — ,,
३. झरना — ,,
४. ग्रन्थि — सुमित्रानंदन पंत
५. पल्लव — ,,
६. गुंजन — ,,
७. पल्लविनी — ,,
८. ग्राम्या — ,,
९. युगपथ — ,,
१०. आधुनिक कवि — ,,
११. यामा — महादेवी वर्मा
१२. नीरजा — ,,

(ग) पत्र-पत्रिकाएं

१. साहित्य संदेश — निराला अंक
२. जनभारती — निराला अंक भाग १
३. जन भारती — निराला अंक, भाग २
४. रसवन्ती — निराला अंक १९६२
५. साप्ताहिक हिन्दुस्तान — नवम्बर, १९६२.